श्रीमती उमरावकुमारी भूतोड़िया
द्वारा
प्रकाशित

फरवरी, १९५९

मुद्रक डी पी सिन्हा,
न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस,
एम. एम. रोड, नई दिल्ली

संस्मरणों के लेखक

उमरावकुमारी भूतोड़िया
अक्षयचन्द्र शर्मा
सैयद अब्दुल लतीफ काज़ी
कन्हैयालाल सेठी
गंगाप्रसाद सिंहल
गणेशमल वैद
चांदमल लोढा
छगनलाल पारीक
जीतमल वैद
जेठमल शर्मा
जोधराज वैद
तेज राजस्थानी
दीपकर शर्मा
धनराज कोचर
मा० वंशीलाल
भीकमचन्द डूगड़
मूलचन्द वैद
मोहनलाल दीक्षित
स्वामी रामनिवास
शंकरलाल पारीक
सागरमल वैगानी
सुमेरुविजय शास्त्री
हरगोविन्द सिंह
पूरणचंद वैद

स्वर्गीय महानुभाव की हस्तलिपि

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्षा-भाव धरूं ॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं ॥ ४ ॥



स्वर्गीय श्री जशकरण जी गौद

संपादकीय

लाडनू के सुपरिचित सार्वजनिक कार्यकर्त्ता श्री जशकरण जी बैद के निधन पर दिनाक ३१ अगस्त, १९५८ के सायकाल साढे सात बजे स्थानीय ओसवाल पचायत के नोहरे मे आयोजित्त शोक-सभा मे नागरिको ने निम्न-लिखित शोक-प्रस्ताव पारित किया

"आज की यह आम सभा श्रीमान् जशकरण जी बैद के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। श्री जशकरण जी समाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। उनकी सादगी, कर्त्तव्य-परायणता, सामाजिक हित की भावना और उनका अनुशासन समाज एव नगर के कार्यकर्त्ताओ के सम्मुख प्रेरणाप्रद अनुकरणीय उदाहरण है। वे एक समभावी विचारधारा के मिलनसार व्यक्ति थे। उनके आकस्मिक निधन से समाज व नगर की बहुत बडी क्षति हुई है। आज की यह सभा दिवगत आत्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करती है और उनके शोक-सतप्त परिवार के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है।"

स्वर्गीय श्री जशकरण जी एक गुणी व्यक्ति थे। वे जीवन पर्यन्त अध्ययन शील रहे। अध्ययन काल मे उन्होने लगभग तीन हजार पृष्ठो की सामग्री धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि श्रेष्ठ विषयो मे सकलित की। यह निस्सन्देह उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति का उदाहरण है।

शहर मे प्राय नागरिको से उनका सम्पर्क रहा था। सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता उनको भली भाति पहचानते थे। उनके सुन्दर गुणो के सभी प्रशसक थे। उनके देहावसान से सभी को दु ख हुआ। इकसठ वर्ष के जीवन-काल मे उन्होने नगर को काफी सेवाएँ की। इसलिए उनके मित्रो और हितैषियो ने उनके सस्मरणो को लिखने का विचार निश्चित किया।

विशेष आत्मीयता के कारण उनके सस्मरणो व संकलन-सामग्री का सम्पादन मुझे सौंपा गया। सहर्ष स्वीकार करना मेरे लिए आवश्यक था,

क्योंकि स्वय मुझसे, व मेरे पूज्य बाबाजी पण्डित छगनलाल जी पारीक से, उनकी एवं उनके सभी कुटुम्बी जनों की अत्यन्त गहरी मैत्री रही है। नगर के अन्य अनेक परिवारो की तरह बम्मू वाले वैदो को भी हमने सदा से अपना निकटतम आत्मीय कुटुम्ब समझा है। वे भी उसी चालीस घरो के कुटुम्ब के एक सदस्य थे। विशेपकर हमारी व उनकी समान अभिरुचि ने तो परस्पर मिलने-जुलने के और भी अधिक अवसर उत्पन्न किए। फलस्वरूप उन्हे ज्यादा निकट से देखा-समझा। उनकी अनुपस्थिति मे उनके लिए दो शब्द कहना मेरे लिए आनन्द की बात ही है।

नगर के कई विशिष्ट सज्जनो ने उनके लिए जो सुन्दर सस्मरण लिखे हैं उनसे स्वर्गीय महानुभाव के गुणो का काफी परिचय मिल जायगा। सपादक के नाते मैं उन सभी का धन्यवाद करता हूँ। मुझे यदि अनुमति हो तो मैं यहाँ यह भी कहना चाहता हूँ कि हमारे नागरिक जीवन के लिए यह प्रयास एक अन्य आनन्ददायक बात की ओर भी संकेत करता है। वह यह कि कार्यकर्त्ता को सदा निर्लेप भाव से सार्वजनिक काम करना चाहिए और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ को अपने साथी कार्यकर्त्ता के गुणो का समादर भी करना चाहिए। यह प्रसग इसका एक अनुकरणीय उदाहरण है। बडी प्रसन्नता की बात है कि हमारे नगर के बन्धुओं ने इस दिशा मे अपनी हार्दिक उदारता का परिचय दिया है। आज ऐसी बातें बहुत कम होती जा रही हैं। इस पर ध्यान रखना समाज और देश के वातावरण को सुन्दर बनाये रखनें के लिए नितान्त आवश्यक है।

आशा है, नागरिक जीवन को शान्त और सुखप्रद बनाने के इस प्रयास को हम सदैव स्मरण रक्खेंगे।

शंकरलाल पारीक

परिवार और पिताजी

उमराव कुमारी भूतोड़िया

[स्व० जशकरणजी की अध्ययनशील एव धार्मिक वृत्ति की सुशीला पुत्री]

अपने स्वर्गीय पिता की पावन स्मृति मे केवल दो आसू बहाकर ही कोई अकिंचन पुत्री सन्तोष धारण कर सकती है। इसके अतिरिक्त हमारे पास है भी क्या ? युग युग से अबला जीवन की तो यही कहानी रही है कि उसने श्रद्धा और स्नेह की अभिव्यजना के लिए आखो का पानी ही अर्पित किया है। मैं भी अपने दिवगत पिता श्री की यादगार मे मूक भाव से अश्रुओ की दो बूदें उनकी श्रद्धामयी स्मृति मे चढाती हू।

पिताजी का अभाव हमे बहुत ही खटक रहा है। आज उनके न रहने से हमारी स्थिति ऐसी हो गई जैसे किसी वृक्ष पर बसेरा करने वाले पक्षियो की वृक्ष के न रहने पर होती है। हमे उनके न होने का दु ख बराबर बना ही रहता है। हमारे लिए सान्त्वना का केवल एक यही आधार है कि वे अपने पीछे मित्रो और हितैषियो का एक बहुत बडा परिवार छोड गये हैं। उनके तो जो भी सम्पर्क मे आया वही उनका हो गया। छोटे बडे का भेदभाव उनकी दृष्टि मे था ही नही। जिससे भी मिलते, हृदय खोलकर मिलते थे और आत्मीयता की व ज्ञान की बातें करते थकते ही नही थे। इसी कारण वे भी अनेको के हुए और अनेक उनके भी हो गए। हम परिवार वाले तो उनके इस स्वभाव से कभी कभी नाराज भी हो जाते थे कि वे किसी साधारण आदमी से क्यो इतनी अधिक बातें करते हैं परन्तु हम उनकी महानता को क्या समझते ?

जीवन और विचारो मे वे सदैव समभावी रहे। "सादा जीवन उच्च विचार" उनका दिव्य आदर्श था। साधु जैसा आचरण था। गृहस्थ होते हुए

भी पूरे साधु थे। परिवार मे रहकर भी वे उससे ऊपर उठे हुए थे। हमेशा स्वाध्याय मे लगे रहना उन्होंने अपना धर्म बना लिया था। अपने अध्ययन-काल मे उन्होने लगभग ३००० पृष्ठो की सामग्री अपनी सुन्दर हस्तलिपि मे तैयार की जिसमे धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि अनेक विषय सम्मिलित हैं। यद्यपि वे कोई विशेष पडित नही थे परन्तु उनकी वृत्ति बडी ही ज्ञान पिपासु थी। जहा भी कोई अच्छी सारमयी वस्तु देखते, शीघ्र उसे अपने सग्रह मे सम्मिलित कर लेते। वे गुणो के जौहरी थे। जैन मतावलम्वी होकर भी वे सभी धर्मों के आदर्शों के अनुयायी थे। हमे भी सव धर्मों का आदर करना उन्होंने सिखाया। हमारे शहर मे जव भी कोई विचारवान व्यक्ति अथवा साधु-सन्त पधारते तो वे उनका सत्संग अवश्य करते। ज्ञान और सत्सग उनका भोजन था। अस्वस्थ अवस्था मे भी ज्ञान की प्यास और सत्सग की क्षुधा उनमे वनी ही रहती थी। मुझे तो वे इतनी अच्छी अच्छी पुस्तकें लाकर देते रहते कि आज उन पर जव भी दृष्टि जाती है, आखें उनकी पवित्र याद मे भर आती है। अव उनको कहा पाया जा सकता है! इस नश्वर जगत मे कोई भी तो काल के थपेडों से नही वच सका।

पिताजी का पारिवारिक जीवन साधारणतया सुखी रहा। परिवार मे अधिक प्राणी नही थे। प्राणियो की ओछत हमारे यहा कुछ पीढियो से ही चली आ रही थी। विशेषकर पुरुष तो एक दो से अधिक होते ही नही थे। मेरे छोटे भाई पूरणचन्द के जव दो लडके हुए तो उनके आनन्द का पारावार ही नही रहा। रोज कहते कि परमात्मा की कृपा से आज हम घर मे चार पुरुष हैं। वच्चो को वे वरावर अपने साथ ही रखते। जैसे उनके मन की कोई वड़ी भारी कामना की पूर्ति उनसे हो गई थी!

प्रारम्भ मे पिताजी के अतिरिक्त माताजी, एक भाई और मैं कुल चार ही व्यक्ति रहे थे। मेरे चार वहने व एक भाई और हुए थे परन्तु वे शैशवावस्था मे ही रहे नही थे। पाच सन्तानो के काल कवलित हो जाने से उनका सारा स्नेह हमी पर केन्द्रित हो गया था। भाई की अपेक्षा मुझ पर उनका स्नेह ज्यादा रहा। मैं ही उनके पास ज्यादा रहती थी। वाद मे मेरा दुर्भाग्य ही उनके विशेष दु:ख का कारण भी वना। नीतिकारो ने पुत्री के दु:ख को महा दु:खो मे से एक वताया हैं। फलस्वरूप मुझ पर दु:ख पडने के वाद वे निरन्तर क्षीणकाय ही होते गये। कभी कभी उन पर इस दु:ख का बोझ अधिक भी वढ जाता था। उन्हे दु:खी देखकर तथा दु:ख से राहत देने के लिए हमें बनावटी प्रसन्नता दिखानी पडती। उनके जैसे ज्ञानी को जो जीवन के

प्रति एक उपेक्षामय दृष्टिकोण मानकर चलते थे एव कष्टो को कष्ट मानते ही नही थे, मैं अभागिनी ही दुखी बनाने का मूल बनी।

उनके जैसे विचार शील, दयालु और ममतावान पिता की पुत्री होने का मुझे बडा ही गौरव है। यो तो ससार मे एक से एक बडे पुरुष हैं जिनकी साक्षी इतिहास दे सकते है, परन्तु दैनिक जीवन मे निकट से जिनके साथ हमारा सम्पर्क रहता है उनके बारे मे तो हम निश्चित रूप से ही कह सकते हैं। मेरे पिताजी भी ऐसे ही एक मानव थे। वे अपनी साधारणता मे असाधारण थे। किसी और व्यक्ति को तो क्या परिवार के जीवन मे भी हमने उनके मुख से कभी कटु वचन नही सुना। क्रोध तो वे कभी करते ही नही थे। सदैव शान्त मुद्रा मे रहना और सदैव सेवा करना उनका स्वभाव था।

समाज की जिस नि स्वार्थ भाव से उन्होंने सेवा की उसी भाव से कुटुम्ब की भी की। हमसे वे किसी प्रकार की सहायता नही लेते थे। साधारण कपडे पहनते थे और साधारण ही भोजन करते थे। हमे तो उनके लिए कोई काम होता ही नही था। यहा तक कि अस्वस्थ रहते तब भी किसी तरह का कष्ट किसी को नही होने देते थे। तीन वर्ष की आयु मे ही वे अपने पिता जी (श्री जीवराज जी) की छत्रछाया से वञ्चित हो गए थे इसलिए उनका प्रारम्भिक जीवन कुछ कष्ट मय रहा था। कष्टो का बाल्यकाल मे ही परिचय मिल जाने से, तथा धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन से उनका जीवन की प्रताडनाओ के प्रति एक अन्यमनस्क दृष्टिकोण बन गया था। वे जीवन को एक मुनाफे खाते की वस्तु मानते थे। हम लोग कभी किसी कौटुम्बिक दु ख की अनुभूति करते तो वे सदैव उसे ज्ञानी के दृष्टिकोण से ही समझाते।

सुना है, जब वे अठारह वर्ष के हुए तो उनके पितामह ने उन्हे अलग कर दिया था। वह समय उनके लिए अवश्य कष्ट का रहा होगा। उसी समय वे परदेश भी गये। सवत् १६७४ की साल तक वे दिसावर जाते रहे थे। उनके बाद से प्राय लाडनू मे ही रहे। समाज और नगर के कामो मे हमेशा लगे रहना ही उनका शौक था। उसी मे दत्तचित्त हो गये। सभा सोसाइटियो मे गये बिना उनको चैन नही मिलता था। बीमारी मे भी उनको बाहर जाने की इच्छा रहती। कभी कभी तो उनके इस स्वभाव से हम लोगो को बडा ही परेशान होना पडता। गर्मी के दिनो मे चुपचाप बिना कहे ही छाता लेकर बाहर निकल जाते और कडी धूप मे जब वापस लौटते तो हम लोग नाराज होते। इस पर वे केवल मुस्करा देते और कहते कि क्या करू, मुझ से तो सभा या मिलने-जुलने वालो के पास गये-आये बिना रहा नही जाता है।

आज जव हम उनके गुणो और निर्मल स्वभाव को याद करते हैं तो रह-रहकर एक के वाद एक वातें मस्तिष्क मे आती है। समभाव-से रहना, सभी समाजो और धर्मो की इज्जत करना, सत्य व्यवहार करना, आलस्य नही करना, क्रोध नही करना, प्रेम और दया को सर्वोपरि समझना आदि कितनी वातें गिनाऊँ ? मैं अल्प वुद्धि वालिका उनकी गहराई को समझ भी तो नही सकती। मैंने तो जो कुछ देखा और समझा वह यही स्वरूप था। हमको सदैव सदुपदेश देते और कुछ न कुछ स्वाध्याय की प्रेरणा देते रहते थे। मुझे तो वे घटो शास्त्र पढकर सुनाते, उसका अर्थ समझाते। ज्ञान चर्चा मे सदैव वे भुलावे मे डाले रहते थे। उनकी वुद्धि सदैव जाग्रत रहती थी और शरीर फुर्तीला। घर का काम रहता या वाहर का, वे आलस्य तो कभी करते ही नही थे। मेहनत का कोई काम करने में वे सकोच नही करते थे। वाजार से खुद घर का सामान ले आते थे और मामूली सी चीज लाने भी तुरन्त वाजार चले जाते थे। स्वय परिवार से कम से कम सेवा कराना व परिवार की सेवा अधिक करना उनका स्वभाव था। लम्वी अवधि तक कौटुम्विक जीवन मे मनोमालिन्य अथवा कटुता भी उत्पन्न होना सहज स्वाभाविक है परन्तु उनको तो हमने कभी भी नाराज होते नही देखा।

लाडनू मे हमारे वम्मू वाले वैदो के चालीस घर है जिनसे उन्होंने एक-सा कौटुम्विक प्रेम वनाये रखा। अन्य सम्वधी भी उनको प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते थे। वे सभी का वरावर खयाल रखते थे इसलिए उनको सभी अपना समझते थे। आपस मे लेन-देन, वर्ताव, आना-जाना इतने स्नेहपूर्ण तरीके से करते थे कि कभी किसी को अन्यथा नही प्रतीत होता था।

अन्तिम दिनो मे रक्तचाप की व्याधि के दूसरे दौरे से कुछ दिन परेशान होकर वे हमे छोडकर विदा हो गये। एक दौरा इससे पहले भी उन्हे रक्तचाप का आ चुका था। जिसमे परमात्मा ने उनकी रक्षा कर दी थी। इसलिए हम इस वार भी आशावान थे, परन्तु काल किस पर अनुग्रह करता है ? उसे तो जिसे अपना ग्रास वनाना होता है उसे वनाता ही है। उपाय भी क्या ?

उनकी पिछले दिनो सौराष्ट्र और गुजरात के तीर्थस्थानो की ओर जाने की उत्कट अभिलाषा थी। उन्होने अपने यौवन काल मे पजाव, वम्वई, वगाल, आसाम और यू पी के कई स्थानो की यात्राए की थी जिनकी छाप उनके हृदय पर वरावर वनी रही। इसी कारण वे चाहते थे कि उपरोक्त स्थानो की यात्रा करके अपने मन की इच्छा पूरी करते। परन्तु उन्हे तो महाप्रस्थान पर जाना था। इन छोटी यात्राओ के प्रसग उनके जीवन मे कैसे आ सकते थे ?

जाते-जाते उन्होंने अपने विलक्षण गुण 'कर्मण्यता का एक प्रमाण' हमें और दे दिया कि एकादशी के दिन प्रात ११ बजे उनका स्वर्गवास हुआ, रक्तचाप से पीडित थे, परन्तु पिछले दिन का खर्च वही मे लिखकर रोकड का मेल तक छाट लिया था। मानो उन्हे ध्यान था कि अपना काम तो पूरा करना चाहिए। वात को नोट करना चाहे वह छोटी ही क्यो न हो, उनके स्वभाव का एक विलक्षण गुण था। हम भाई-वहनो पर किस वात मे कव कितना खर्च हुआ, शहर मे कव कौन सी महत्वपूर्ण घटना हुई, परिवार के सम्वध की अनेक वातें तथा इसी तरह देश और विश्व के वारे मे भी वे जो भी वात महत्व की मानतें, उसे जरूर नोट कर रखते। इस तरह से उनके नोट किये हुए प्रमाण हमारे लिए एक वहुमूल्य वस्तु हैं।

परमात्मा दिवगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हम कुटुम्वियो मे इतना वल रहे कि हम उनके अभाव के दु ख को सहन कर जीवन यापन कर सकें। जिस तरह से उन्होंने कष्टो को अपने जीवन का मार्ग दर्शक वनाया और हमेशा कष्टो को साधारण रूप मे ही समझा उसी तरह हमे भी उनके आदर्श जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी आत्मा को सुदृढ वनाना चाहिए।

गंगा की तरह वह शीतल स्वच्छ स्वभाव !

अक्षयचन्द्र शर्मा

[शिक्षा-विशेषज्ञ एवं विद्वान् आचार्य]

पिछले दिनो श्री जगकरण जी वैद के आकस्मिक स्वर्गवास का दु.सवाद सुनकर मैं स्तब्ध-सा हो गया। ऐसा स्वप्न मे भी नही सोचा था कि हम श्री वैद की सेवाओ व सत्प्रेरणाओ से इतने शीघ्र वचित हो जायेंगे। पर, काल की गति दुर्निवार है। यह हमारी अपूर्णनीय क्षति है।

श्री जगकरण जी पर लिखना, सारे सस्मरणो को थोडे मे बटोरना, मेरे लिए कठिन-सा है। वे मेरे एक अन्यतम हितैषी थे; उनसे मैं समय-समय पर प्रेरणा, प्रोत्साहन व सहयोग पाता रहा हूँ।

मैं आपके सीधे सम्पर्क मे १९३५ मे आया। उस समय मैं श्री उम्मेद मिडिल स्कूल मे अध्यापक बनकर आया था। तब से बराबर ११ वर्ष तक आप से मेरा सम्बध रहा। आप उक्त स्कूल के वर्षो मत्री व प्रबधकारिणी के सम्मान्य सदस्य रहे। उस समय की अनेक घटनाएँ मेरे हृदय-पटल पर अकित हैं, जिनसे श्री वैद जी के गौरवशाली व्यक्तित्व का पता लग सकता है।

उम्मेद मिडिल स्कूल मे मैंने गलती से या भावुकता से पुस्तकालय का कार्य सभाल लिया था। छात्रो व अध्यापको को मैं पुस्तकालय की चावियाँ दे दिया करता था और उनसे पुस्तकें समय पर वापस कर देने का आग्रह कर दिया करता था। कुछ पुस्तकें रजिस्टर मे दर्ज होती और कुछ यो ही रह जाती। नतीजा यह निकला कि मेरे भोलेपन, प्रमाद व सहज विश्वासशीलता के कारण पचासो पुस्तकें गायब हो गयी। इधर हेडमास्टर भी नये आये थे। किसी के उकसाने पर वे मेरी शिकायतें पर शिकायतें करने लगे। उस समय आप स्कूल

के मन्त्री थे। आपने हेडमास्टर को साफ साफ कह दिया कि मैं अक्षयचद्र जी को जानता हूँ; वे परिश्रमी, योग्य व ईमानदार व्यक्ति हैं। हाँ, लापरवाह जरूर हैं। मैं उनको समझा दूंगा। बाद मे आपने मुझसे कहा कि लाइब्रेरी का कार्य छोड दो। पुस्तको के दाम तो आप कहाँ से लायेंगे, इधर-उधर से पुस्तकें बटोर कर उतने मूल्य की पुस्तकें जमा करा दो।

आपके इस उदार व सहृदयतापूर्ण व्यवहार से मैं तो बस उबर गया। सैकडो रुपयो का भार मैं उठा भी नही सकता था।

एक बार मैंने उतावलेपन मे स्कूल से त्यागपत्र दे दिया और फिर वापस लेने की आवश्यकता पडी। दो एक मेम्बर जरा गडबड करने लगे, उस समय आपने मेरा जोरदार पक्ष समर्थन किया और बडे आदरपूर्वक मेरा त्यागपत्र वापस कर दिया।

जब भी मौका आया, आपने हमेशा अध्यापको का पक्ष समर्थन किया और उनकी आर्थिक तरक्की मे भरसक कोशिश की। आप वेतन समय पर दिलवाने मे बराबर प्रयत्नशील रहे।

(२)

मझोला कद, सुन्दर स्वस्थ शरीर, गोल चेहरा, स्नेहभरी आँखें, गभीर मधुर वाणी—ऐसा था आपका आकर्षक व्यक्तित्व।

आपको सभा-सम्मेलनो का बेहद शौक था। कोई विशिष्ट व्यक्ति, साधु-सत, विद्वान्-पडित या राजनीतिज्ञ लाडनू आते तो उनसे आप जरूर मिलते, उनसे जरूर बातें करते और उनका जरूर सत्सग करते।

श्री जशकरण जी की विशेषता थी—स्वच्छता। वस्त्रो मे स्वच्छता, भाषा मे स्वच्छता, व्यवहार मे स्वच्छता और हृदय मे स्वच्छता। वैसा निर्मल स्वच्छ स्वभाव कहाँ है लोगो मे! छल-छद्म का आप मे नाम तक नही था। आपका कोई विरोधी नही था, मित्र सभी थे। जब किसी के साथ विचार-भेद होता, आप साफ-साफ, मिठास के साथ, अपनेपन के साथ, प्रकट कर देते थे। मन मे कुछ, जबान पर कुछ, ऐसा आप मे नही था।

आप मे ज्ञान की पिपासा थी। जहाँ भी कुछ अच्छा देखा, अच्छा सुना या अच्छा पढा उसको हृदयगम करना और उसके अनुसार जीवन को ढालना, यही आपका जीवन-व्रत था। साधु-सतो की विमल वाणी को याद करने मे आपको बेहद आनन्द आता था। जब सुनाने लगते थे तो अर्द्ध-मागधी से लेकर कबीर, दादू, नानक आदि महात्माओ की अनेक साखिया सुनाने लगते।

आपकी मान्यता थी कि सब धर्मो मे अच्छी बातें है। तेरापन्थी, बाईस टोला, दिगम्बरी, सनातनी व आर्य समाजी किसी की ओर से कोई बखाण, उपदेश, भाषण व प्रवचन होते, आप सभी मे एकभाव से जाते और अच्छी-अच्छी बातो का संग्रह कर लेते।

आप प्रशंसा सब की करते थे, पर किसी की निन्दा करना व सुनना आपको सुहाता नही था। आपके कहने का ठरका—वह लहजा, कुछ और ही था। बातें करते-करते खिलखिलाकर हसना और बातो का आनन्द लेना भी आपको बहुत प्रिय था।

आपका समझौते मे विश्वास था। लड़ाई-झगड़े से सौ कोस दूर रहते थे। जहा भी आग जलती देखते, उसे बुझाने की ही कोशिश करते। हरेक से आप खुद चलाकर बात करते, किसी प्रकार की 'मोट मर्जाद' आप मे नही थी। सब को अपनी ओर से अच्छी सलाह देते। सबसे एक सी बात कहते। वह बात बस प्रेम की होती, मेल-मिलाप की होती। किसी से जब बातें करते तो अत्यत आत्मीयता के साथ, सामने वाला अपना सारा हृदय खोलकर रख देता। किसी के प्रति द्वेष का कभी भाव ही नही रखा।

असल मे आप साधु स्वभाव के थे। निर्मल, निष्कपट व सारग्राही स्वभाव! समय की पाबदी, कार्य करने की क्षमता, पेचीदगियो को सुलझाने की सूझबूझ — इन्ही गुणो के कारण आपने लाडनू के सार्वजनिक, सामाजिक, शैक्षणिक व सास्कृतिक जीवन के उत्थान मे पूरा सहयोग दिया। आपकी अनेक क्षेत्रो मे अमूल्य सेवाए हैं।

पिछले १२ वर्षो से मेरा लाडनू से बहुत कम सम्पर्क रहा है। श्री जशकरण जी से भी बहुत कम मिलना हुआ। कुछ वर्षो पहले आपका किसी इलाज के सिलसिले मे बीकानेर आना हुआ था। प्रिय पुत्री के वैधव्य की मार्मिक चोट से आप घायल थे, पर, आपके मुख पर पूर्ववत् शान्ति व सौम्यभाव था। मुझ से मिलकर आप कितने आह्लादित हुए थे, उसे शब्दो मे प्रकट करना कठिन है। उसके बाद मुझे फिर आपसे मिलने का अवसर नही मिला।

श्री जशकरण जी के निधन से केवल लाडनूं की ही क्षति नही हुई है, आसपास 'चौखले' मे ऐसे सज्जन विरले ही मिलेंगे। आप जिनसे एक बार भी मिल लेते, अपने मधुर स्वभाव से उसे मोह लेते।

आपसे बढकर बुद्धिमान, कार्यशील व योग्य आदमी तो बहुत मिल जायेंगे, पर आप मे जो मानवोचित गुण थे, उनका सरलता से मिलना बहुत मुश्किल है।

आपके सरल व साधु स्वभाव तथा निश्छल व मधुर व्यवहार ने आपको सर्वप्रिय बना दिया था। सभी वर्गों के, सभी स्तर के लोग आपके प्रति आदर भाव रखते थे।

आपकी अभी बहुत आवश्यकता थी, पर दुर्भाग्यवश काल के वज्र-प्रहार ने सब कुछ नष्ट कर डाला। यदि हम आपके सात्विक व सरल जीवन और आपके कोमल-मधुर स्वभाव से सत्प्रेरणा प्राप्त कर सकें तो हम अपने जीवन को सेवा-परायण बना सकेंगे और अपने चतुर्दिक् व्याप्त विक्षुब्ध वातावरण को मधुर, प्रेमास्पद व सहिष्णु बनाने में पूरा योग दे सकेंगे।

आज आपका भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं, पर आपके कार्यों का दीप हमारा पथ आलोकित कर रहा है। एक बार पुन मैं स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति श्रद्धावनत होना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

खुदा उनकी रूह को बख्शीस में ले

सैयद अब्दुल लतीफ काजी

[उदार विचारों के कार्यकर्त्ता नगरपालिका लाडनूं के उपाध्यक्ष]

मेरे बहुत ही काविल एक दोस्त का अचानक इस दारे फानी मे उठ जाने की इत्तला सुन कर निहायत अफसोस हुआ । इस फानी दुनिया से रिश्ता तोड़ कर जाने वाले मेरे उस काविल दोस्त का नाम जनाव जशकरण वैद था ।

उस हमकदम महबूब का जब कभी खयाल आता है तो दिल और दिमाग मे वडी हैचान होती है क्योंकि मेरा वह साथी सिर्फ मेरा ही दोस्त नही था वल्कि शहर के करीब करीब सारे ही शहरियो का हमदर्द और दोस्त था । नर्मी और मुलायमिअत उसकी जुवा, दिल और दिमाग मे कुदरत ने कूट कूट कर भरी थी । यह उनकी खासियत थी कि जिसने भी उनसे अगर इत्तिफाकिया ही गुफ्तो-सुनीद की तो वह उनका हमेशा के लिए मोती (फरमावर्दार) हो जाता ।

कोई भी शख्स शहर का खाका तरक्की की तरफ ले जाने का खयाल आपके सामने रखता या आपसे किसी किस्म की इमदाद चाहता तो आप खुले दिल से शहर की भलाई के लिए सवोरोज हर हालत मे खा आपको कितनी भी तकलीफ हो, वरदाश्त करते हुये तैयार हो जाते थे और जितनी भी मदद दे सकते, देते ।

उमर के लिहाज से आपने शाही हकूमत का जमाना देखा था, मगर मुल्क मे होने वाली तव्दीलिया उनके दिल और दिमाग मे गहरा असर रखती थी और इसके लिए आपके ख्यालात आला दर्जे के थे ।

किसी कौम, किसी मजहब का कोई भी शख्स हो उसके लिए उनके दिल मे अच्छी जगह रहती थी। और वे चाहते थे कि हमारा शहर, हमारा मुल्क जिसमे कई तबके के लोग रहते हैं, उन्हे हक मिले और इस तरह मुल्क की तब्दीली से उन्हे राहत और आराम मिले।

वह कई अन्जमनो मे कई ओहदो पर वक्त वक्त पर रह चुके थे और उन ओहदो पर रहने के बाद जो काम उन्होने किए वह काबिले दाद है।

इन्सा दुनिया मे जो आता है अगर किसी काबिल होता है तो वह कुछ कर गुजरता है जैसा कि मेरे साथी जयकरण जी बंद किया करते थे।

मैं उनकी तारीफ मे जितना भी लिखूं कम होगा। मैं तहे दिल में खुदा से दुआ करता हूँ कि वह उनकी रूह को बख्शीस मे ले।

सादगी व सेवा के उपासक

कन्हैयालाल सेठी

[स्थानीय मंडल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष · नगरपालिका के सदस्य]

सदैव ऐसे व्यक्तियों का ही जीवन स्मरणीय वन सकता है जो अपने जीवन-काल मे कुछ कर गुजरते हैं। श्री जशकरण जी वैद का नाम भी लाडनू मे उन्ही व्यक्तियो की श्रेणी मे आता है। यद्यपि हमारा उनसे अधिक सम्पर्क नहीं रहा है, फिर भी जो कुछ उनके जीवन मे देखने को मिला वास्तव मे वह महत्व रखता है। उनके जीवन मे सादापन था एव उनका व्यवहार भी वैसा ही था, जो उनके जीवन की एक विशेपता कही जा सकती है। वे एक श्रमशील व्यक्ति थे, जिसकी आज के युग को नितान्त आवश्यकता है। उनको कभी निष्क्रिय नही देखा गया, वल्कि किसी न किमी कार्य मे सलग्न ही पाया।

यद्यपि उनकी शिक्षा कोई आज के कालेजो की नही थी तथापि वे एक शिक्षित एवं विचारक थे। उनका आध्यात्मिक-अध्ययन अच्छा था तथा धार्मिक व साहित्यिक संकलन का कार्य वे वरावर करते रहते थे। उनके जीवन मे एक जिज्ञासा वृत्ति रहती थी। इस प्रकार उन्हे काफी धर्मो व सप्रदायो का ज्ञान भी था, ऐसा उनकी "भावना सग्रह" नामक पुस्तिका से प्रतीत होता है। जैन धर्म के अतिरिक्त वे अन्य धर्मो को भी समान दृष्टि से देखा करते थे तथा प्रत्येक धर्म की अच्छी वातों की ओर उनका झुकाव रहता था। अपनी जिज्ञासा की तृप्ति हेतु वे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के सत महात्मा अथवा उपदेशक के पास पहुँच जाते थे।

वे स्थानीय सामाजिक सस्थाओ को खडा करने एव उनकी प्रगति मे वरावर हाथ रखते थे। इसके अतिरिक्त वे कई सार्वजनिक कार्यो मे भी दिल-

चस्पी रखते थे और उनको सम्पन्न करवाने मे तत्पर रहते थे। वे किसी सस्था के पदाधिकारी न होते हुए भी उसकी उन्नति मे सहायक रहते थे।

वे एक सहृदय व्यक्ति थे। गरीवो के प्रति उनके भाव उदार रहते थे। उनके प्रति सहानुभूति का व्यवहार रखते थे। उनको किसी भी कार्य मे उत्तेजित होते हुए नही देखा गया। वे हर एक के साथ नम्रता से पेश आते थे तथा प्रत्येक कार्य को धैर्य पूर्वक किया करते थे।

इस प्रकार के सेवाप्रिय व्यक्ति का स्वर्गवास अकस्मात् ही हो गया जो लाडनू के लिए क्षति की वात है। उन्होंने अपनी इस ६१ वर्ष की आयु मे जितना कार्य किया वह सच्ची लगन, परिश्रम एव निष्काम भाव से किया तथा सादगी व सेवा का एक आदर्श उपस्थित किया। लोगो को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए।

सारग्राही सज्जन

गंगा प्रसाद सिंहल

[शिक्षा विशारद दि. म. हा. सेकन्डरी स्कूल के प्रधानाचार्य]

इस सृष्टि मे प्राणी आते है और जाते है। अनेक आये तथा गये। आज यदि उनका कुछ आभास मात्र मिलता है तो भूगर्भस्थ अस्थिपजरो से—और ये भी इतिहास की लडी जोडने मे काम आते है।

मनुष्य भी अन्य प्राणियो की भाति जन्मता है और मरता है—कोई कीडे-मकोडो की भाँति तथा कोई गुलाब के पुष्प की भाँति; जिसके मुरझाने के बाद भी कुछ महक रहती और इतर प्राणियो को अपनी सुरभि से सुवासित करती रहती है।

स्वर्गीय श्री जशकरण जी बैद का भी जन्म और मरण एक सुवासित पुष्प की भाँति ही आँका जा सकता है। यद्यपि मैं उनके सपर्क मे बहुत निकटता से नही आ सका, किंतु जितना उनको पहचान सका उसके आधार पर उनमे भी सुवास थी-कुछ महँक थी। वे सीधे, सरल व सादगी पसद थे। साधारण गृहस्थ का जीवन बिताते थे, किन्तु हिन्दू सस्कारो के कारण आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख थे। यद्यपि वे समाज छोड कर सत नही बने, किन्तु सत-समागम के प्रेमी तथा चातक की भाँति सत वाणी-स्वाति रस के लिए सदैव लालायित थे। वे व्यवसायी वर्ग के थे, किन्तु इसका भी उनका अपना एक आदर्श था। उनकी सग्रहीत पुस्तिका 'भावना-सग्रह' मे एक स्थान पर विभिन्न वर्णो के लिये जो आदर्श पथ की विवेचना है, यदि उसे उनकी पोषित विचारधारा मानें तो वह आज के पतनोन्मुख मनुष्यो के लिए सामयिक उद्बोधन है। गृहस्थाश्रम के झझटो मे रहते हुए भी वे संत-समागम तथा

सामायिकी के लिए समय निकाल लेते थे और इसमे उनका मन रमता था। वे तेरह पथी साधु परपरा के अनुयायी थे, किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरता से दूर थे। उनकी पुस्तक 'भावना-सग्रह' मे सभी पथ व धर्मो के अनमोल रत्न चुने गये है।

श्री जशकरण जी नश्वर जगत् मे कुछ दिन यदि और रहते तो समाज उनसे कुछ और भी प्राप्त करता। नही तो, विधि का विधान! मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हुतात्मा को शान्ति प्रदान करे और उनके सतप्त परिवार तथा साथियो को इस अभाव के सहन करने की प्रेरणा दे।

पूज्य काकोजी को श्रद्धांजलि

गणेशमल वैद

[सर्वोदय-आन्दोलन के कर्मठ सदस्य : शिक्षा विकास के सक्रिय प्रेरक]

मेरी उम्र १५ वर्ष की थी, सातवी कक्षा मे श्री उम्मेद स्कूल मे पढता था। उस समय पूज्य काकोजी श्री जशकरण जी ही ओसवाल हितकारिणी सभा के मन्त्री थे जिसके अन्तर्गत उक्त स्कूल चलती थी। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सार्वजनिक सेवा की भावना मुझ मे अप्रत्यक्ष रूप से उनके मार्फत आयी। जब वे स्कूल मे निरीक्षण के लिए आते थे तो मेरा हृदय बडा आनन्दित होता था। मुझे लगता था कि सार्वजनिक काम करने का सौभाग्य मेरे घर वालो को भी प्राप्त है और उसका असर मेरे मन पर होता था। उनमे सार्वजनिक सेवा की भावना विद्यमान थी। किसी न किसी सार्वजनिक काम से वे जुडे रहते थे।

जशकरण जी बहुत ही सरल और साफ दिल के व्यक्ति थे। कटुता उनके स्वभाव मे ही नही थी। जब कभी कटुता का कोई अवसर उपस्थित होता तो उसका असर सिर्फ चेहरे पर ही लक्षित होता, लेकिन दिल मे सरलता और प्रेम ही कायम रहता। अर्थात् कटुता-क्रोध आदि उनके लिए अस्वाभाविक वृत्तियाँ थी और उनका दिल उनसे घृणा करता था। प्रेम उनमे लबालब भरा रहता था। जो कोई आपके पास आता चाहे वह अपना हो या पराया उनसे प्रेम लेकर ही लौटता। प्रेम ही मनुष्यता की कसौटी है। जिसमे जितना ज्यादा प्रेम है, समझना चाहिए कि मानवता का उसमें उतना ही अधिक विकास हुआ है। परस्पर अविश्वास के कारण ही मानव का विकास अवरुद्ध हो रहा है और दुनिया मे अशाति बढ रही है। इसका मूल कारण है — मानव प्रेम की

कमी। अगर मानव मात्र के लिए मानव मे प्रेम हो तो अशाति तुरन्त दूर हो सकती है। पूज्य काकोजी मे मानव के लिए प्रेम था। यद्यपि उम भावना को प्रदर्शित करने का उन्हे मौका नही मिला, वैमा मानसिक विकाम भी नहीं हो सका। परिस्थिति भी वैमी नही वन सकी, तथापि उनके अन्दर वृत्ति थी। कटुता की वात उन्हे वडी नागवार लगती थी। कैमा भी अवमर हो वे अपने स्वभाव की मधुरता नही खोते थे। प्रेम से काम निपटना चाहिए यही उनका मूल सूत्र था। उसके लिए समझौता करना पडे तव भी तैयार रहते थे।

उनमे नये विचारो के लिए चाव था, लेकिन पुराने विचारो को छोडने के लिए भी तैयार नही होते थे। यानी उनमे नये और पुराने के समन्वय की वृत्ति थी। विचार या सिद्धान्त की रक्षा के लिए किसो के दिल को चोट पहुँचे यह उनको नही भाता था। जिस काम की उनमे धुन सवार हो जाती थी उसमे वे पूरी शक्ति से लीन हो जाते। अणुव्रत का विचार जव उनको पसन्द आया तो वे उसके प्रचारक वन गये और सारी शक्ति उसी के प्रचार मे लगा दी। प्रचारक रहते हुए भी नये विचारो को समझने की इच्छा वरावर रहती थी। उन्होने कभी भी अधश्रद्धा के वशीभूत होकर अपने दिमाग के दरवाजे वद नहीं किये थे। सभी तरह के विचारो को समझने की उनकी इच्छा रहती थी, यद्यपि अपने आचरण मे नवीनता को विशेप स्थान नही दे सके। उनकी सवसे वडी विशेषता यह थी कि अपने से विरोधी विचार वाले के साथ भी वर्ताव मे प्रेम की कमी कभी नही आती थी।

उनमे मानव प्रेम सर्वोपरि था। ऐमे स्नेहमय काकोजी की स्मृति से वडा वल मिलता है। ऐसे निष्कपट व्यक्ति की आत्मा निश्चित रूप से शाति मे वास करती है। मेरा शतशत प्रणाम उस दिवगत आत्मा को है जिसके दिव्य गुणो को विकसित करने की जिम्मेदारी सवसे अधिक हम लोगो पर हैं। ईश्वर हमे उनकी लायक सतान वनने का वल प्रदान करें।

न्याय और सत्य के प्रेमी

चान्दमल लोढा

[सुप्रीम कोर्ट के एडवोकेट, जोधपुर बार एसोसियेशन के प्रेसीडेंट]

मुझे श्री जगकरण जी वैद की अचानक मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त खेद हुआ। मेरा उनके साथ सम्पर्क एक वकील और फरीक की तरह पिछले वर्षो रहा था। वे बडे ही शात प्रकृति के सज्जन थे। सत्य उन्हे अत्यन्त प्रिय था। आज उनके देहावसान के पश्चात् मुझे खूब स्मरण है कि उन्होने जब कभी अपने मुकदमात सम्बधी मुझ से बात की तो यही प्रकट किया कि अन्तिम परिणाम चाहे कुछ भी हो, चाहे सफलता मिले या न मिले और कानून उनके पक्ष मे हो या विपक्ष मे, वे झूठ बोलकर या झूठे उजर उठाकर अपने मुकदमे को मजबूत बनाने की कोशिश न करेंगे। ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क मे आने से मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। उनकी प्रवृत्ति धर्म और धार्मिक उसूलो के प्रति काफी बढी हुई प्रतीत होती थी।

उनकी आत्मा पवित्र और पापरहित स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती थी। उनके देहावसान पर उनकी शुद्ध आत्मा के प्रति मैं अपनी श्रद्धाजलि प्रकट करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि दिवगत आत्मा को अमर शान्ति प्राप्त हो।

मेरे अभिन्न मित्र

छगनलाल पारीक

[नगर के श्रद्धास्पद विद्वान आचार्य]

युवावस्था मे ही मेरा और स्व० जगकरण जी का निकटवर्ती सम्पर्क रहा है। वैसे तो नगर के जिन अनेक परिवारो मे हमारा निकटतम मैत्री-सम्बध रहा है उनमे से उनका परिवार भी एक है। पर विशेष कर उनकी साहित्यिक अभिरुचि और जिज्ञासु वृत्ति ने उन्हे मेरे हृदय के और भी समीप ला दिया। मुझे स्मरण है, अनेक वर्षो पूर्व हमने एक साहित्यिक मैत्री का सबध बनाया था और उसे प्रतिदिन हमने सजीव बनाये रक्खा। उनके यहाँ मैं प्राय जाता रहा हूँ। प्राय ही विविध विषयो पर जिज्ञासुओ के समान हमने साहित्यिक और दार्शनिक विषयो पर वार्तालाप किया है। मैं तो जिस दिन उनकी तरफ नही जाता उस दिन मन मे कुछ खिन्नता अनुभव करता था। उनके कुटुम्बी भाई श्री चम्पालाल जी बैद की मेरे प्रति स्वजनता व आत्मीयता के उत्तरोत्तर विकास ने हमारी मैत्री को और भी बल दे दिया। दोनो के मकान एक ही अहाते मे होने के कारण मुझे वे प्राय मिलते रहते और मुझे देखते ही अपनी सहज मुस्कान भरी विनम्र वाणी से आकर्षित कर बातचीत के लिए रोक ही लेते।

पुराने दिनो के साहित्यिक वार्तालाप के स्थान पर आगे चल कर घरेलू बातो की प्रधानता हो गई थी फिर भी हम दोना को धार्मिक और दार्शनिक विषयो की विस्मृति भी नहीं होती थी। व्यक्तिगत स्वाध्याय, नगर की शिक्षा मे प्रगति, नवोदित साहित्यकारो की चर्चा, अच्छे ग्रन्थो के प्रकाशन एव गुणी-जनो के सत्सग के प्रसग हमारी रुचि के विषय रहते थे। वास्तव मे ही मैं उनसे मिल कर प्रसन्नता अनुभव करता।

मेरे निवास स्थान के समीपवर्ती तपागच्छ उपासरे के स्व० श्री समर्थ विजयजी के पास उनका आना जाना विशेप रूप से रहता था। ग्रीष्म-काल के दोपहर के समय कुछ और भी धार्मिक जिज्ञासु वृत्ति के सज्जन वहाँ आ जाते थे। उपासरे के पास ही हमारे मन्दिर के कमरे मे मैं विश्राम करते समय उनकी निर्मल वाणी और मधुर अट्टहास को सुनता रहता। वहाँ कभी कभी तो इतना दिलचस्प और सुरुचिपूर्ण प्रसंग छिडा रहता कि मुझे विश्राम को भुलाकर भी वहा जाना पडता था। जशकरण जी मान्यता से जैन मतावलम्वी होकर भी कभी कभी जव अन्य धर्म के सिद्धान्तो का समर्थन करते तो मुझे ऐसा लगता कि इनमे विचारो की विशेप उदारता है। वास्तव मे विचारो से उदार बन कर ही मनुष्य दूसरो की आत्मीयता का पात्र वन सकता है।

दीर्घकालीन सम्पर्क मे कभी कभी मनोमालिन्य अथवा पारस्परिक कटुता भी होनी जीवन मे संभव है, परन्तु उन स्वर्गीय मित्र के साथ कभी कोई ऐसा अवसर उपस्थित नही हुआ। सिद्धान्त या मत के वैपम्य पर मैं तो कभी कभी उत्तेजित हो जाता था परन्तु उनको मैंने सदैव शान्त-गंभीर देखा।

नगर के सार्वजनिक जीवन मे काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओ को जशकरण जी का आदर्श व मान्यताएँ वडी उपादेय सिद्ध हो सकती हैं। काफी वर्पो तक उन्होने सामाजिक व शैक्षणिक मंस्थाओ का काम देखा, परन्तु वे सवकी प्रशंसा के ही पात्र वने। यह स्वाभाविक भी था, क्योकि जो कार्यकर्त्ता न्यायप्रिय, सच्चा और नि.स्वार्थी होता है उसे मभी पसन्द करते हैं।

यद्यपि उनका रचनात्मक काम ओसवाल ममाज की सस्थाओ द्वारा ही हुआ, परन्तु वह एक तरह से नागरिक सम्थाओ का कार्य ही कहा जाना चाहिए। 'ओसवाल' नाम भले ही सस्था के साथ जुडा हुआ रहता, फिर भी वे संस्थाएँ सभी नागरिको की हित-कामना को लेकर वनी हुई थी। नामो मे उदारता का दिखावा करना चाहे पहले के लोगो को न आया हो लेकिन कामो मे उदारता वरतना पहले के लोग भली भाँति जानते थे। पुरातन पथियो का जमाना होने पर भी उन दिनो के लोगो मे जो सर्वजनहिताय की भावना थी उसे तो आज हम खोते जा रहे है।

मुझे याद है, ओसवाल हितकारिणी सभा व ओसवाल पचायत ने नगर की शैक्षणिक उन्नति मे किस प्रकार और कितना काम किया। मेरा सौभाग्य वश, प्राय. सभी कार्यकर्त्ताओ से कौटुम्विक-सा सवध रहा, इसलिए मैं उन लोगो के वारे मे वहुत अच्छी तरह प्रकाश डाल सकता हूँ। उन अनेक कर्मठ कार्यकर्त्ताओ मे से ही एक श्री जशकरण जी थे। उन लोगो ने जितने उत्साह

और लगन से नगर की नि स्वार्थ मेवाएँ की हैं वे आज के युवकों के लिए सीखने की वात है। कहना चाहिए कि लाडनू नगर को आज जिन सुयोग्य व्यक्तियो पर गौरव हो सकता है वे मव के सव उन्ही कार्यकर्त्ताओ के परिश्रम से तैयार हुए है।

उम्र की अवधि आ जाने पर इस असार ससार से सभी को विदा लेनी पडती है, यह तो निर्विवाद ही है। समय की भाँति मनुष्य के भी पल-पल निरन्तर व्यतीत हो जाते है परन्तु कुछ मनुष्य अपनी विदाई के वाद भी ऐसी मधुर याद स्वजनो के हृदय मे छोड जाते है कि उनको भूलना कठिन हो जाता है। भाई जशकरणजी की स्मृति भी हम सवके चित्त पर जीवन-पर्यन्त अकित रहेगी।

उनके निधन के पश्चात् उनकी स्मृति मे उनके हितैषियो, मित्रो और स्वजनो द्वारा सद्भाव व्यक्त करना एक पुनीत कर्त्तव्य है, सार्वजनिक सेवा कार्यो मे जीवन-दान देने वालो को यद्यपि इसकी चाह नही हुआ करती।

जिन्हें भूल नहीं सकते

जीतमल वैद

[अध्ययन-शील युवक : नगर की सामाजिक संस्थाओं के सहयोगी]

श्री जशकरण जी वैद आज हम लोगो के बीच नही रहे। उनकी मृत्यु से लाडनू के सार्वजनिक जीवन मे एक अभाव-सा हो गया है। उनका अपना एक अलग व्यक्तित्व था, अपनी कार्य शैली, उनकी मिलन सार प्रकृति सहज ही मे सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। जो भी उनके संसर्ग मे आये वे उनके मधुर व्यवहार से प्रभावित हुये बिना न रह सके। वे सादगी पसन्द आदमी थे। स्वभाव से शात और विचारो मे उदार होने के कारण हरेक क्षेत्र मे मध्यम मार्ग को ही अपनाते थे ।

सार्वजनिक क्षेत्र मे जैसे सस्थाओ का अपना महत्त्व है वैसे ही व्यक्ति विशेष का भी कुछ कम महत्त्व नही है। दूसरे शब्दो मे सार्वजनिक जीवन इन दोनो पर ही आधारित रहता है। लाडनू के सार्वजनिक क्षेत्र मे श्री जशकरण जी अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण एक अलग ही स्थान रखते थे। क्या सामाजिक और क्या धार्मिक सभी क्षेत्रो मे उनके अपने विचार सुलझे हुए रहते थे। आदर्श की अपेक्षा यथार्थ पर अधिक ध्यान रखते थे। यह भी खयाल रखते थे कि कही उनकी वजह से किसी को दु ख तो नही होता है। सामाजिक क्षेत्र मे उन्होंने कई बार लाडनू की सुप्रसिद्ध प्राचीन सस्था श्री ओसवाल सभा (श्री ओसवाल हितकारिणी सभा) के मत्री एव विभिन्न पदो पर रह कर सस्था एव समाज दोनो की सेवा की। जहाँ अनेक जन-हितकारी कार्यों के लिए लाडनू-निवासी उक्त सभा के चिर ऋणी हैं वहाँ सभा भी एक कर्मठ कार्यकर्ता के रूप मे स्व० जशकरणजी को कभी भूल नही सकती। सभा द्वारा

सस्थापित एव सचालित जे बी. हाई स्कूल, बालिका विद्यालय इत्यादि के निर्माण एव सचालन मे उनका अत्यधिक हाथ रहा था। सभा के अलावा स्थानीय श्री ओसवाल पचायत के वे अंतिम समय तक मत्री थे ।

आस्तिक लोगो के लिए धर्म जीवन का अविच्छिन्न अग होता है और लोग अपने अपने विश्वास के अनुसार धर्म की साधना करते है। स्व० जग-करणजी इस ओर भी जागरूक थे। अपने विश्वास के अनुसार यथाशक्ति धर्म-ध्यान करते थे । उन्हे अपने धर्म के अलावा अन्य सम्प्रदायो की भी यथेष्ट जानकारी थी। स्वय एक सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी होने पर भी दूसरे धर्मा के प्रति कभी असहिष्णु न रहे। वे हरेक धर्म की बातो की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते थे। सब बातो के अलावा जो बात विशेष तौर पर उनमे देखी जाती थी वह थी ज्ञान की पिपासा। प्राय देखने मे आता था कि जब भी उन्हें अवकाश मिलता वे कुछ न कुछ स्वाध्याय करते रहते थे। केवल पढते ही नही बल्कि उन पर अच्छी तरह मनन भी करते थे और जो बाते उन्हे अच्छी लगती उनको सग्रह के तौर पर लिखते थे। उनकी ग्राह्य बुद्धि हर जगह से अच्छी बातों को ग्रहण करने के लिए सदैव तत्पर रहती थी।

निःस्वार्थ कार्यकर्त्ता

जेठमल शर्मा

[नगरपालिका लाडनूं के अध्यक्ष]

जीवन-चक्र मे इन्सान की आँखो के सामने कई तरह की घटनायें घटित होती है और अल्प-समय मे उनकी याद लुप्तप्राय सी हो जाती है। लेकिन किन्ही व्यक्तियो मे कुछ ऐसी विशेषताये होती हैं जो जिन्दगी भर भूली नही जा सकती तथा जिनकी छाप अमिट रहती हैं । ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तियो मे से स्वर्गीय जशकरण जी वैद थे ।

आपका जन्म ओसवाल समाज के एक कुलीन परिवार मे हुआ था और उपजाति से आप वैद थे—लेकिन, आम लोग आपको 'मूंथाजी' के नाम से ही सम्बोधित करते थे ।

मैं, जब ओसवाल समाज द्वारा सचालित एक स्कूल मे अध्यापक था उस समय 'मूथाजी' स्कूल मे काफी अरसे तक मंत्री रहे और इसके अलावा ओसवाल हितकारिणी सभा के भी आप मंत्री रहे थे। अतः उन दिनो मे मुझे मूथा जी के सम्पर्क मे आने का काफी मौका मिलता था तथा स्कूल से सम्बन्ध-विच्छेद करने के बाद भी कई तरह की समस्याओ पर बातचीत करने का अवसर प्राप्त होता रहता था ।

श्री मूथाजी का जीवन सादगी से परिपूर्ण था। आपकी वेश-भूषा सादगी लिये हुये होती थी । बोलचाल मे मधुरता व सरलता के अतिरिक्त स्पष्टवादिता की प्रधानता रहती । इनकी हर बात वजनदार होती थी तथा गंभीरता लिये रहती थी ।

श्री मूथाजी ने अपने जीवन मे वैसे राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक

कार्यो मे भी हिस्सा लिया, लेकिन विशेष-रूप से सामाजिक व धार्मिक कार्यो मे अपनी विशेष दिलचस्पी रखी। समाज मे वे अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। हर कार्य को बडी लगन से करते थे। यही कारण था कि जो जो कार्य-भार उन्हे समाज ने सौंपा, उसे इन्होने बडी सफलतापूर्वक निभाया।

सभी धर्मो के प्रति सम्मान रखते हुये विशेप-रूप मे जैन-धर्म के प्रति उनकी आस्था थी व जैन-धर्म के ग्रन्थो मे पूर्ण रुचि रखने के साथ ही साथ रात-दिन अध्ययन व मनन भी करते रहते थे। खास बात तो उनमे यह थी कि वे अन्ध-भक्त नही थे और न अन्धविश्वासी ही थे। वे एक बुद्धि-जीवी व निष्ठावान् व्यक्ति थे।

उनके निधन से जैन-समाज मे ही नही बल्कि नगर के सार्वजनिक जीवन मे भी एक अमिट क्षति हुई है। उन जैसे सार्वजनिक जीवन मे नि स्वार्थ-भावना से कार्य करने वाले व्यक्ति बहुत कम होते है।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि स्वर्गीय आत्मा को व उनके सतप्त परिवार को शान्ति प्रदान करे।

सर्वप्रिय सहयोगी

जोधराज बैद

[वयोवृद्ध समाजसेवी तथा शिक्षा-प्रेमी]

स्वर्गीय जशकरण जी बैद समाज के प्रखर व्यक्तित्वपूर्ण आदर्श पुरुष थे। उनमे समाज-सुधार की उच्च-भावना थी। कुरीतियो मे फंसे हुए समाज को सकीर्णता के दायरे मे ऊपर उठाने के लिए उनसे निरंतर प्रेरणा प्राप्त होती रही। उनके साथ मुझे एक लम्बे अर्से तक काम करने का अवसर प्राप्त हुआ था। ऐसा निश्छल जीवन, शांत स्वभाव, कार्य-कुशलता, आदर्श-चरित्र विरले ही लोगो मे मिल सकता है।

जशकरण जी यद्यपि जैन समाज मे पैदा हुए थे, पर उनमे सभी जातियो, वर्गों एवं समाज के लोगो के प्रति अगाध स्नेह था, वे सभी लोगो से प्रेमपूर्वक मिलते, उनके दु.ख-सुख मे सहयोग देते एव उनके विचारो का आदर करते थे। वे शिक्षा के प्रति काफी रुचि रखते थे। वे स्थानीय उम्मेद मिडिल स्कूल के वर्षो तक मंत्री के रूप मे कार्य करते रहे, उस कार्यकाल मे निरतर स्कूल की प्रगति मे मनोबल के साथ योग देते रहे। 'ओसवाल सभा' का पथ-प्रदर्शन वे वर्षो तक करते रहे। इस सभा की आर्थिक स्थिति सुदृढ रही, इसमे इनका बहुत बड़ा हाथ था।

जशकरण जी सच्चे आस्तिक थे, पर उनकी यह आस्था सकीर्णता से परे की थी। वे धर्म के गूढ तत्त्वो को समझते थे तथा दर्शन शास्त्र की जटिल व तमोमूढ पगडडियो के दुरूह जीवन से दूर रहते थे।

आपने अपने जीवन की समस्त शक्ति अच्छे कार्य की ओर ही लगाई थी इसीलिए आज उनका अभाव खटकता है तथा उनका मधुर व्यक्तित्व, हसता चेहरा, आदर्श जीवन रह-रहकर हृदय को बेचैन कर देता है। ऐसे सर्वप्रिय सहयोगी को कैसे भुलाया जाय ?

स्वर्गीय आत्मा के प्रति

तेज राजस्थानी

[प्रतिभासम्पन्न आशुकवि, कार्यकर्ता और उत्साही युवक]

सेवा से सद्भावो से ही "मुंथाजी" का नाम रह गया।
चले गये वे फिर भी उनका अमर धरा पर काम रह गया॥

तुम समाज के व्यक्ति एक थे,
तुम से दूर समाज नहीं था,
मिले बिना कोई से रहते,
ऐसा कभी मिजाज नहीं था,
भलपन साथ लिये दिल तेरा,
जहाँ गया अभिराम रह गया॥१॥

इस समाज के एक सिपाही,
तरुण-हृदय तुम रहे सदा ही,
कभी न की जाने अनजाने,
व्यवहारो मे लापरवाही,
सेवा सब को याद रहेगी,
धरा यहीं धनधाम रह गया॥२॥

स्नेह किया सच्चा समाज से,
सेवा के खातिर ही तन था,
सरल स्वभाव इसी कारण से,
रहता प्रति पल निर्मल मन था,

व्यक्ति चला जाने पर भी,
उसका सारा गुणग्राम रह गया ॥३॥

जिससे बोले हंसकर बोले,
शब्द नहीं बोले बिन तोले,
पूछा करते बात किसी से,
मीठेपन से होले होले,

जो कुछ भला बन पड़े करना,
यह लालित्य ललाम रह गया ॥४॥

सौम्यता की सजीव प्रतिमा

दीपकर शर्मा

[निःस्वार्थ लोकसेवी एवं नगर-विकास के प्रणेता]

स्वर्गीय श्री जशकरणजी वैद लाडनूं नगर के एक प्रमुख समाज सेवी कार्यकर्त्ता थे। उनके आकस्मिक निधन से लाडनूं के जन-जीवन मे से एक असाधारण प्रतिभायुक्त कार्यकर्त्ता चला गया।

श्री जशकरणजी को समाज का कर्त्तव्यनिष्ठ मूक सेवक कहना अत्युक्तिपूर्ण नही होगा, क्योकि वे जो भी कार्य करते बड़ी लगन के साथ, बिना किसी बाहरी दिखावे के करते। नामवरी पाने के लिए मैंने उन्हे कभी कार्य करते नही देखा।

यद्यपि मेरा और उनका कार्य-क्षेत्र भिन्न था, किन्तु समय समय पर मेरा उनसे मिलना हो ही जाता था। मेरे और उनके बीच अनेक विषयो पर चर्चाएं चलती थी। मैंने उन्हे विचारो के आदान-प्रदान के लिए सदैव तैयार पाया। किसी भी विषय पर चर्चा के समय अपनी जिद कायम रखने के लिए अड़े रहना उनके स्वभाव के विपरीत था। सही बात को स्वीकार करने के लिए वे सदा उद्यत रहते। वे जिज्ञासा की प्रतिमूर्ति थे। किसी विषय पर हम एकमत नही हो पाते तो वे समझने-समझाने का प्रयास निरन्तर जारी रखते। इस प्रकार मेरा उनसे जब कभी सम्पर्क हुआ, मैंने उन्हे बड़ा उदारचित्त पाया।

वे कहने से बढकर करने को मानते थे। उनका कार्य करने में अधिक विश्वास था, बोलने मे कम। उन्होंने अपने जीवन मे नगर की अनेक संस्थाओं मे पदाधिकारी रहकर इसी पद्धति से काम किया। अपने उत्तरदायित्व के प्रति

वे विशेप जागरूक रहते थे। उन्होने जिस काम को एक बार अपने हाथ मे लिया उसे पूरा करने के लिये वे सतत जागरूक रहे।

साहित्य के पठन-पाठन मे उनकी विशेप रुचि रहती थी। विभिन्न धर्मों के ग्रथो का अध्ययन वे करते रहते थे। उनकी आध्यात्मिक विचारधारा उच्चस्तरीय एव व्यापक थी। अनेक सम्प्रदायो के तपस्वियो से उनका सम्पर्क था। नगर मे आनेवाले साधुओं से उनकी तात्त्विक चर्चा होती थी। सत-समागम एव सत्सग को वे बहुत महत्त्व देते थे। वे कहते थे कि 'सत-समागम से आनंद की प्राप्ति और ज्ञान की वृद्धि होती है। अतः संत-समागम एव सत्सग से लाभ ही लाभ है।'

मृदु संभापरण एव सद्व्यवहार के कारण बहुत अधिक लोगो से उनका घनिष्ट परिचय था। उनकी सज्जनता ने उन्हे लोकप्रिय बना दिया था। अहंकार-शून्यता ने उनमे विशिष्टता पैदा कर दी थी।

उन दिवगत मित्र के लिए अधिक क्या लिखा जाय। उनकी सादगी, उनकी सहनशीलता, उनका मधुर व्यवहार तो सदा याद आता रहेगा। उनकी मधुर स्मृति तो सदा ताजा रहेगी। सौम्यता की उस सजीव मूर्ति की आत्मा जहा कहीं हो आनन्दयुक्त रहे, यही कामना है।

मैं चर्च रहा केसर चन्दन

धनराज कोचर
[दार्शनिक कवि और जिज्ञासु]

इस अचल धरा पर चल सबकी, आती जाती यह परछांई।
आती सब के मन को भाती, जाती बन जाती दुखदाई॥
परिवर्तित ध्रुव-वस्तु स्वरूप, परिवर्तित ही नित बहता है।
निज करणी कृत फल भोग भोग, वह सदा सर्वदा रहता है॥
तू था फिर भी अब नहीं यहाँ, निश्चय तू आज कहीं न कहीं।
सत स्पष्ट नष्ट होता न कभी, रहता वह आप कहीं न कहीं॥
तू था अनादि का तत्व, सादि, तेरे जीवन की थी झाकी।
चहुँगति मे गति करती करती, निखरी तव मानवता वाकी॥
था शात सत्य अन्वेषी तू, श्रद्धामय निर्मल औ गंभीर।
हित वंच्छक औ समाज सेवी, प्रभु भक्ति मे अविचल सधीर॥
सत पर झुक कर बातें करना, तेरे जीवन की थी धारा।
इस कारण ही जग को भाता, तू लगता था सब को प्यारा॥
रह तेरा पंथ तत में तू, सत सोच अरे नित प्रति धरना।
सत अपनाता आगे बढ़ता, पल पल मानवपन को वरता॥
तू हठधर्मी नहीं था किंचित, हठ को तू कहता पाप अरे।
हठ मे नहीं सत, सत में नहीं हठ, सत ही सत मे खुद आप अरे॥
तव स्वच्छ आत्म पर विवेक का, दिखता था सत प्रकाश पल्लवित।
इह कारण धैर्य अचल घट था, था प्रभु विश्वास सदा संचित॥
प्रभु पद विश्वास लिये अन्तर, प्रभु वन्दे का धरकर वन्दन।
सुस्मृति मे पुष्प चढ़ा कर दो, मैं चर्च रहा केसर चन्दन॥

कर्त्तव्यपरायण और स्पष्टवक्ता

मा० वंसीलाल

[अध्यापक, रत्नों और इन्सानों के पारखी जौहरी]

मेरी आधी जिन्दगी स्व० जगकरण जी के घनिष्ठ संपर्क मे बीती। उनकी कार्य-क्षमता देखने का समय समय पर मुझे अवसर मिला। धनी मानी वैश्य कुल में जन्म लेकर भी उनमे धन-लोलुपता नही थी। यह उनका एक विशिष्ट गुण था। युवावस्था से ही उनके दिल मे सामाजिक सेवा के प्रति अनुराग रहा जिसका श्रेय उनके कुल-भूषण श्री धनराज जी वैद को दिया जा सकता है, जिनकी प्रेरणा से कई नव उत्साही युवक सामाजिक संगठन की ओर लगे। फलस्वरूप ओसवाल समाज की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था श्री ओसवाल हित-कारिणी सभा के आप आजीवन सदस्य ही नहीं बने, उन्होने समय समय पर सक्रिय भाग लिया और संस्था की कठिनाइयो को सुलझाया। अपनी निर्भीक आलोचना से दूसरे कार्यकर्ताओ का वे पथ-प्रदर्शन करते थे। उनकी स्पष्ट-वादिता की छाप सब कार्यकर्ताओ पर थी अतएव उनकी आलोचना का अच्छा ही असर पडता था।

महाकवि अकबर के शब्दो मे इस भाँति कहा जा सकता है—"जो कहना होगा रास्ता रोक के कह लूंगा, क्या न मिलोगे कभी राह मे आते जाते।" उनकी आलोचना कभी प्राइवेट नही होती थी। वाचनालय मे, रास्ते-बाजार मे, जहाँ कही भी अवसर मिला उन्होने अपनी राय जाहिर की। धन उपार्जन की तरफ कोई विशेष ध्यान न देकर, समाज सेवा को अपनाया।

आप सामतशाही युग की पैदाइश थे, परन्तु उनके विचारों मे स्वाधीनता थी—नवजीवन था, स्फूर्ति थी, सेवा-भाव था। इसलिये आप सबके स्नेह-भाजन बने।

उस समय का समाज सभा सोसाइटियो का विरोधी था। पंचायत भी खिलाफ थी, राज्य भी संस्था को शंका की दृष्टि से देखता था। ऐसे वातावरण मे अपना काम किये जाना साधारण मनुष्यो का काम नहीं है।

मैंने उनको परम आस्तिक पाया। जैन मतावलम्बी होते हुये भी अन्य सम्प्रदायो के प्रति राग द्वेष न होने के कारण हर एक सम्प्रदायो के सिद्धान्त और दृष्टिकोण को समझने की जिज्ञासा बनी रहती थी। इसलिये सभी स्थानो मे उनका आना जाना होता रहता था। मामूली शिक्षा होने पर भी उनकी स्वाध्याय से बहुत रुचि थी। वे सन्तो की पीयूष वाणी का निरन्तर संग्रह करते रहे।

जीवन के अन्तिम क्षणो मे रुग्ण अवस्था मे भी अपने नित नैमित्तिक कर्म मे उन्होंने बाधा न आने दी। या यो कहिये कि उन्होने जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाया। अन्याय को सहने की दुर्बलता उनमे न थी। अन्याय का समय समय पर सामना किया, संघर्ष मे भी आये और भगवान ने उन्हे कार्य क्षेत्र मे सफलता भी दी। ऐसे सद्गृहस्थ के असामयिक निधन से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। ऐसे कर्तव्य-परायण मनुष्य को लाडनू की जनता याद करेगी इसमे कोई सन्देह नहीं।

सच्चे सेवक

भीकमचन्द दूगड़

[व्यवसायी एवं उत्साही समाजसेवी]

स्वर्गीय जशकरणजी का नाटा कद, गेहुँआ रग और सुडौल शरीर था। चेहरे पर कान्ति, रोम-रोम मे समाज-हित की भावना थी। सुलझे हुए विचार लिए एवं साधारण पोशाक पहने हमारे कस्बे के मुहल्लो मे वे कई दफा मिलते थे। देखने और वार्तालाप करने से मालूम होता था मानो "सादा जीवन उच्च विचार" वाली किंवदन्ति को चरितार्थ करनेवाले साक्षात् व्यक्तित्व से भेंट की हो। सहनशीलता, धैर्य, दयालुता एवं विवेक की वह साक्षात् प्रतिमा थे। उनके आकस्मिक देहावसान से सारे नगर मे सन्नाटा छा गया और एक ठोस कार्यकर्ता का स्थान रिक्त हो गया। आज उनका स्मरण होते ही हृदय मे रोमांच पैदा होता है और व्यक्तिगत स्वार्थ को छोडकर समाज-हित की भावना जाग्रत होती है। उस चेतन व्यक्तित्व का पूरा विश्लेषण करना इस जड़ लेखनी की शक्ति के परे की बात है।

समाज की प्रमुख सस्थाओ के वे आजीवन सदस्य थे। न केवल सक्रिय रूप से भाग लेना ही, बल्कि उनकी गतिविधियो को प्रगति के पथ पर अग्रसर करना भी उनका मूल लक्ष्य था। व्यक्तिगत स्वार्थ या व्यक्तिविशेष के हित का ध्यान न देकर वे समाजहितैषी कार्यों को विशेष महत्व देते थे। सार्वजनिक संस्थाओ एव सभाओ मे भाग लेने के समय अनुशासन का वे विशेष खयाल रखते थे।

उनका वाक् चातुर्य तो एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात थी। वे हमेशा सरल और सरस भाषा का प्रयोग करते थे। उनकी वार्ता श्रोता के अन्तःस्तल

को छू लेती थी। प्रत्येक वात मजी हुई एव तर्क-सगत होती थी। वार्तालाप के समय आवेश मे आना तो उन्होने सीखा ही नही था। उनमे वार्तालाप करने के वाद प्रत्येक समस्या का किसी न किसी रूप मे समाधान हो ही जाता था।

निकटवर्ती हो या दूरवर्ती, गरीव हो या अमीर, अपना हो या पराया, वातावरण की खाई तो उनकी दृष्टि के परे थी। वे समद्रष्टा थे। जैन होते हुए भी जैनेतर कार्यो मे खुशी और उत्साह के साथ भाग लेते थे। वर्ग, जाति, और सम्प्रदाय का भेद उन्हे छू नही पाया था।

वे वडे न्यायप्रिय व्यक्ति थे। दवे हुए को दवाना, किसी के हक की परवाह न करना उन्हे वहुत अखरता था। वे सामाजिक कार्यकर्ताओ को सदा प्रोत्साहन देते थे। उनकी कार्यपरायणता कार्यकर्ताओ को आह्वान करती है। उनकी स्मृति सही माने मे हमे समाज हित के कार्य मे प्रेरित करती है। हम उनके गुणो को अपने कार्यों मे लायें यही उनका सस्मरण है। नि सदेह, वे समाज के सच्चे सेवक थे।

बुजुर्ग और साथी

मूलचन्द वैद

[शिक्षा-प्रेमी, समाजसेवी एव नगर के विशिष्ट नागरिक]

बात बहुत पुरानी है—करीब पच्चीस साल पूर्व की, जब मैं अध्ययन-काल की छुट्टी के सिलसिले मे कलकत्ते से लाडनू गया हुआ था। उस समय मैं अधिकतर कलकत्ते ही रहता था, इसलिए लाडनू के बहुत से व्यक्तियों से मेरा परिचय नही था। स्व० जशकरणजी यद्यपि मेरे कुटुम्बी जनो मे से थे, किन्तु उनके निकट सम्पर्क मे आने का उस समय ही अवसर मिला। अवस्था मे मैं उनसे बहुत छोटा था, किन्तु फिर भी उन्होने मेरे साथ शिक्षा, समाज एवं धर्म के विषयो पर खुलकर बाते की, यद्यपि मेरी प्रकृति इस प्रकार एकाएक किसी से घुलमिल जाने की नही थी। विविध भाषाओ के अध्ययन के सिलसिले मे उन्होंने इतनी रुचि दिखाई कि मुझसे प्रस्ताव किया कि उर्दू को भी सीखा जाय क्योकि भारत की बडी भाषाओ मे से यह भी एक थी। शिक्षा उनकी सामान्य थी, किन्तु अध्ययन के प्रति सर्वदा उनकी उग्र रुचि रही। फलस्वरूप उन्होंने मुझे प्रभावित किया और हम दोनो ने एक साथ घर पर शिक्षक बुलाकर उर्दू सीखना प्रारम्भ किया। उक्त प्रसग लिखने का तात्पर्य यह है कि श्री जशकरण जी मे एक यह विशेषता थी कि वे अपने से बडे और छोटे प्रत्येक व्यक्ति के साथ घुलमिल जाने की क्षमता रखते थे और अध्ययनशीलता उनके जीवन का एक अंग थी। तभी से मेरा उनके साथ निकट सम्पर्क रहा और उनके इन गुणों से मैं सदा ही प्रभावित रहा हूँ।

स्व० जशकरणजी की धार्मिक और सामाजिक विचारधारा स्वतत्र थी। धार्मिक विषयो के अध्ययन मे तो उनकी विशेष रुचि थी किन्तु वे कट्टरवादी

विल्कुल नही थे। धार्मिक सहिष्णुता उनमे इतनी थी कि वे किसी भी धर्म के उपदेशक के यहा जिज्ञासु बुद्धि से जाने को उत्सुक रहते थे और अपने विरोधी विचारो को भी शान्ति से सुनने की क्षमता रखते थे। आध्यात्मिक विषय मे वे श्री दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ 'सत्यभक्त' के साहित्य एव हाल ही मे श्री कानजी स्वामी के साहित्य से काफी प्रभावित रहते थे। उन्होने 'भावना सग्रह' नाम की एक सुन्दर पुस्तक सकलित करके लिखी जिसमे सब धर्मो के सतो की एतद् विषयक वाणी का अध्ययनशील सग्रह है। उक्त पुस्तक चार-पाच साल पूर्व प्रकाशित हो चुकी है।

स्व० जशकरणजी एक सेवाभावी सामाजिक और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। आपने लाडनू की श्री ओसवाल सभा, जे बी हाई स्कूल, जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा, ओसवाल पचायत आदि सस्थाओ के संचालन मे काफी योगदान दिया एव इनके मत्री और अन्य पदो पर अनेक बार कार्य किया। आपका अधिकतर समय लाडनू मे ही बीता इसलिए आप यहा की किसी न किसी शैक्षणिक एव सामाजिक प्रवृत्ति मे लगे ही रहे। दम्भ आप मे नाममात्र को भी नही था। किसी भी ऊचे या नीचे पद पर कार्य करने के लिए आप समान रूप से तत्पर थे। जातिगत सामाजिक विषमता मे आपका विश्वास नही था एव विरोधी के प्रति भी आत्मीयता प्रदर्शन आपकी एक विशेषता थी।

अतिम दिनो आपका स्वास्थ्य वैसे ठीक नही रहता था। स्वास्थ्य के विषय मे पूछताछ करने पर यही कहते थे कि इसकी क्या चिता है, जीते है उतना ही मुनाफे खाते है। जिस तरह लोग जीने का अधिक मोह रखते है वह मोह उनमे नही था। वास्तव मे साधक व्यक्ति ही ऐसा कर पाते है। आशा है, श्री जशकरणजी के जीवन से हमे कुछ न कुछ प्रेरणा मिलती रहेगी।

उनकी मुस्कान याद आती है

मोहनलाल दीक्षित

[नगरपालिका के सदस्य, उत्साही सर्वप्रिय युवक]

अचानक सुनाई पड़ा—उनकी इतनी ही श्रायु थी। कहने वाले की ओर मेरा ध्यान अचानक खिच गया। मैंने पूछा, 'क्या हुआ, किसकी आयु इतनी ही थी?' उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने कहा, "जशकरण जी वैद का देहान्त हो गया है!"

मैं उस समय कुछ लिख रहा था। उक्त संवाद सुनकर मेरी लेखनी अवरुद्ध हो गई। क्षण भर मे स्वर्गीय आत्मा का मुस्कानयुक्त चित्र मेरी आखो के सामने से घूम गया।

मेरा उनसे पिछले १५ वर्षों से घनिष्ट परिचय था। अनेक बार विविध विषयो पर मेरी उनकी चर्चाएँ हुई थी। मैंने उनको सदा सर्वदा सहनशील, हंसमुख और विनम्र पाया।

निस्सन्देह उनका व्यक्तित्व प्रतिभायुक्त एवं विशिष्ट था। उनकी सरलता, मिलनसारिता से अपरिचित भी प्रभावित हो जाता था। उनके व्यवहार की उसके मन पर महत्वपूर्ण छाप पड़ जाती थी।

वे अधिकतर मौन रहते थे। मौन का प्रभाव वे जानते थे। वे जब बोलते, बहुत ही सोच समझ कर बोलते। नपे-तुले शब्दो मे अपनी बात कहते। नीरवता शक्ति का चिन्ह होती है। व्यर्थ की चर्चा छेडना, वाद विवाद करना शक्ति का नाश करता है। शायद इस महामन्त्र को उन्होने पढ रखा था।

जब जब मैं उनसे मिलता उन्हे देख कर मेरे मन मे यह जिज्ञासा उत्पन्न होती कि इस व्यक्ति को किसी महाविद्यालय मे अध्ययन करने का अवसर

नही मिला, फिर भी इसने इतना विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्व कहाँ से पाया, इतनी सरलता, सुजनता कहाँ से प्राप्त की ! चूंकि उनसे मेरा परिचय लम्बे अर्से से रहा है अत: उन्हे जानने का मुझे यथेष्ट अवसर मिला ।

उन्हे हिन्दी, पुरानी राजस्थानी और गुजराती का अच्छा ज्ञान था । उनको पठन पाठन मे अत्यधिक रुचि रहती थी । ज्ञान की वृद्धि मे अगर उनका कोई सहायक था तो वह एक मात्र विभिन्न विषयो के साहित्य का पठन-पाठन ही था । उन्होने जितना ज्ञान प्राप्त किया, घर बैठे बैठे या विद्वानो के संपर्क मे आकर किया ।

उनकी धार्मिक विचारधारा उच्चस्तरीय थी । वे विभिन्न धर्मों के उच्च कोटि के साहित्य का मनन करते रहते थे । किसी भी धर्म का कोई साधु या विद्वान् नगर मे आता तो वे उससे अवश्य मिलते, उससे उनकी चर्चा-वार्ता होती, किन्तु उनका रुख सदा जिज्ञासापूर्ण रहता । किसी विषय पर जिद करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था । उनकी मान्यता थी कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का विचारो का आदान-प्रदान चलता रहना चाहिए । मनुष्य को अच्छी बातें सीखने के लिए अपने मस्तिष्क का द्वार सदैव खुला रखना चाहिए, इसमे हिचकिचाहट कैसी ? वे सभी धर्मो के प्रति आदर की भावना रखते थे । सभी धर्मो के साधुओ को वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे ।

वे अपने जीवन-काल मे अनेक संस्थाओ के सफल पदाधिकारी रहे । उन्होने नगर की ओसवाल हितकारिणी सभा के उपाध्यक्ष पद पर, उम्मेद स्कूल मे मत्री व कोषाध्यक्ष के पद पर, तेरापथी सभा के मत्री पद पर कार्य किया । स्थानीय जे० बी० हाई स्कूल के वे प्रारम्भ से ही ट्रस्टी रहे । ओसवाल पंचायत के मत्री पद पर भी वे काफी समय तक रहे ।

उन्होने उक्त संस्थाओ मे पदाधिकारी रहकर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए । उनके विचार राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थे । साम्प्रदायिकता के लिए उनके हृदय मे कोई स्थान नही था । समाज मे प्रचलित कुरीतियो को वे उठा देने के पक्षपाती थे । उनके स्वभाव मे एक अप्रतिम मधुरता थी, इसीलिए आम लोगो मे उनके प्रति सहानुभूति थी ।

मैंने महिलाओ के प्रति उनके विचार जानने चाहे थे । वे महिलाओ मे प्रचलित पर्दा-प्रथा एव अन्धविश्वास से अत्यन्त असन्तुष्ट थे । उन्होंने कहा, 'मेरे खयाल से महिलाओ की अवनति का मूल कारण महिलाओ का अशिक्षित होना है । हमारे देश मे मातृजाति एक तरह से कारावास दण्ड भुगत रही है । यद्यपि लोगो का ध्यान इस तरफ गया है, किन्तु मेरे विचार मे तुरन्त ही कोई क्रान्ति-

कारी कदम उठाकर स्त्री समाज को अवनति के गर्त से नही निकाला जा सकता। इस क्षेत्र मे तो समझा बुझा कर रस्म रिवाजो को बदलना होगा। नई पीढी को शिक्षित करना होगा। तब कही जाकर महिलाओ के दम घोटू घूघट को हटाया जा सकेगा।'

हरिजनोत्थान के विषय मे उनके अपने विचार थे। हरिजनो को ऊंचा उठने का अधिकार है इस बात को वे मानते थे, पर वे वर्तमान समय के हरिजनोत्थान के तौर तरीको को उचित नही समझते थे। उनका विचार था कि यह समस्या हृदय-परिवर्तन के जरिए ही हल हो सकती है, कानून से नही। कानून से तो लोगो मे कटुता फैलेगी और कानून को लोग चाहे ऊपर से मान लें, पर हृदय-परिवर्तन हुए बिना भीतर से नही मानेंगे। उनका कहना था कि हरिजनो मे शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार किया जाना चाहिए और हरिजनो को विभिन्न उद्योग-धन्धो की शिक्षा दी जानी चाहिए। हरिजन मन्दिर प्रवेश के लिए आन्दोलन करते है, इसकी आवश्यकता नही। यह तो धीरे धीरे स्वयं होने वाला है। हरिजनो को तो 'विद्यालय-प्रवेश' आन्दोलन छेडना चाहिए, जिससे हरिजन पढलिखकर अच्छे कामो मे लग सकें और उनकी आर्थिक हालत सुधरे।

साहित्य-संग्रह करना भी उनकी अच्छी आदतो मे से एक था। वे न केवल पुस्तकें पढते ही वरन् स्वय कुछ लिखते थे, संग्रह करते थे। उनका 'भावना-संग्रह' नामक एक सुन्दर संकलन प्रकाशित भी हुआ था जिसका सग्रह उन्होने ही किया था। उनके परिवार वालो के पास अब भी उनका सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण संग्रह सुरक्षित है। उनके इस सग्रह मे खोजपूर्ण विविध विषयो के सम्बंध मे सामग्री मौजूद है। उनका यह संग्रह प्रकाशित हो सके तो सर्व साधारण के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

श्री जशकरण जी समाज के कर्मठ कार्यकर्ताओ मे से एक थे। वे लोगो के आपसी विवादो को मिटाने मे अत्यन्त कुशल थे। किसी भी अच्छे कार्य मे सहयोग देने के लिए वे हर समय तैयार रहते थे। स्थानीय राजनैतिक कार्यकर्ताओ से भी उनकी गहरी मित्रता थी किन्तु राजनीति मे वे स्वयं कभी नही पडे। वे कहते कि वर्तमान समय मे राजनैतिक कार्यक्षेत्र मे कार्य करने की अपेक्षा राष्ट्र निर्माणकारी प्रवृत्तियो मे लगे रह कर काम करना ज्यादा अच्छा है, क्योकि इस समय राजनैतिक वातावरण अत्यन्त दूषित हो गया है। कार्यकर्ताओ मे स्वार्थ परता आजादी के बाद बहुत बढ गई है। इसलिए दलबंदी के झगडे मे क्यो पडा जाय?

श्री जशकरण जी अन्तिम दिनो मे रक्तचाप व्याधि से पीडित हो गए थे। ६१ वर्ष की आयु प्राप्त कर उन्होंने महाप्रस्थान किया। वे अपने पीछे अपने परिवार मे अपनी धर्मपत्नी, एक पुत्र, पुत्र का परिवार व एक पुत्री छोड गये हैं।

किसी भी स्वजन मित्र के निधन पर दु ख होना स्वाभाविक है। किन्तु जब किसी कार्यकर्ता की, समाज-सेवक की मृत्यु होती है तो उसका दु.ग्व उनके-परिवार तक ही न रह कर अनेक लोगो को होता है। श्री जशकरण जी के निधन से अनेक लोगो को दु ख हुआ।

उन्हे जाना था वे चले गए, रुकते भी कैसे, किन्तु उनके जाने से एक ऐसा हसमुख, सहनशील, परिश्रमी नागरिक चला गया है जिसका अभाव नगर के लोगो को खलता है, खलता रहेगा।

उनके बाबत अपने सस्मरण क्या लिखू। लिख कर तो उसे रख छोडू जिसे भूल जाने का डर हो। श्री जशकरण जी को तो भुलाया नही जा सकता। मैं नही भुला सकता शायद और भी भुला नही सकते।

आज भी उनकी मधुर मुस्कान मुझे याद आती है, याद आती रहेगी।

समदर्शी आस्तिक

स्वामी रामनिवास

[मुमुक्षु साधक, सर्व हितैषी एवं कर्मयोगी]

स्वर्गीय जशकरण जी लाडनू के जन-समाज मे विशेष श्रद्धा के पात्र थे। उन्होने अपने जीवन-काल मे जन-समाज के सामने जो आदर्श काम किये तथा धार्मिक विचारधारा के प्रसारार्थ जो त्याग किया वस्तुत वह ऐसा है कि इसका उदाहरण इस नगर मे दीपक लेकर भी ढूढने पर न मिलेगा।

जशकरण जी पुण्यात्मा पुरुष थे। सच्चे आस्तिक व्यक्ति थे। उनके हृदय मे सभी धर्मो के प्रति सच्चा अनुराग था। वे किसी एक धर्म विशेष मे सीमित नही थे। उनकी रुचि सभी धर्मो के तत्त्वो से सार-चयन करने की थी। स्वय जैन होते हुये भी वैदिक ग्रन्थो के अमृत तत्त्वो के अनुसंधान मे वे सलग्न रहते थे, वे सत्संगी भी थे और मुमुक्षु भी। उन्होंने सभी लोगो के साथ अपना मधुर सम्बन्ध जोड़ने की सफल चेष्टा की। सभी के साथ प्यार और दुलार का व्यवहार प्रदर्शित किया। इसीलिये लोग उनके गुणो से मुग्ध थे।

वैद जी अनेक वार सत्सग-भवन मे महात्माओ के सत्सग मे बैठते और ज्ञान प्राप्ति के लिये क्रियाशील रहते थे। उनमे विनम्रता, सरलता, सादगी, संयम व सद्विचार कूट कूट कर भरे थे। उनके जीवन मे विद्यानुराग, सदाचार-निष्ठा, धर्म-प्रेम, समाज-सेवा, एवं त्याग आदि की शुभ भावनायें भरी हुई थी।

उन्नति चाहने वाले लोगो को उनके जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षायें लेकर उनके पदचिह्नो पर चलकर अपने जीवन का निर्माण करना चाहिये, जिससे आत्म-कल्याण हो सके।

श्रद्धा के दो शब्द

शंकरलाल पारीक

हमारे नगर मे सार्वजनिक जीवन काफी सजीव और बहुमुखी रहा है। संस्थाओ और कार्यकर्त्ताओ की यहाँ अपनी विशेषता है। पच्चीस-तीन हजार की जनसख्या का कस्बा होने पर भी यहाँ शिक्षण-संस्थाओ, चिकित्सालयो, व अन्य प्रकार की संस्थाओ की बहुतायत है। इसका अधिकाश श्रेय नगर के सुयोग्य कार्यकर्त्ताओ को ही है। जिस उत्साह और जन-हितैषी भावनाओ से प्रेरित होकर उन्होने सेवा-कार्य किए हैं उनकी बदौलत हमारे नागरिकों को अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध हुए हैं। प्रसगवश, उनमे से एक स्मरणीय कार्यकर्ता श्री जशकरण जी बैद का मैं उल्लेख करना चाहूँगा।

उन्होने हमारे शिक्षा-सम्बन्धी क्षेत्र मे काफी योगदान किया। छात्रो व छात्राओ की शिक्षा के लिए स्थानीय ओसवाल हितकारिणी सभा द्वारा सचालित स्कूलो के प्रबन्ध-मडल के वे कर्मठ सदस्य थे। इन स्कूलो की उन्नति के लिए वे अपना अधिकाश समय देते रहे। आज दिन वे स्कूलें काफी उन्नति कर गई हैं और प्रति वर्ष काफी सख्या मे सुयोग्य विद्यार्थी तैयार करती हैं। यह देखकर चित्त बडा प्रसन्न होता है और हम उन सज्जनो को आदर सहित याद करते है जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ सहन कर इन स्कूलो को स्थापित किया और बाद मे अनेक प्रकार की आर्थिक कठिनाइयो के बावजूद भी जीवित रखा।

मैं पाँच-छ वर्ष स्थानीय उम्मेद मिडिल स्कूल (अब जे बी हाई स्कूल) का छात्र रहा। श्री जशकरण जी स्कूल के मन्त्री थे। स्कूल की विविध गतिविधियो मे एक उत्साही छात्र की तरह भाग लेते रहने के कारण कई बार ऐसे सुअवसर आते थे जब मुझे मन्त्री जी के पास जाना पड जाता था। उनकी

मेरे बाबा जी पं. छगनलाल जी पारीक से घनिष्टता थी इसलिए मैं उनसे घरके बालक की तरह ही बात करता। वे भी उस कारण से मुझ पर विशेष स्नेह रखते।

उन्ही प्रारम्भिक दिनो से मेरा निरन्तर उनसे सम्पर्क रहा। बाद मे, जब मेरा साहित्य-प्रेम बढा व साहित्य-सेवा को मैंने जीवन का व्रत बना लिया तब तो वे मुझ से अत्यधिक स्नेह करने लगे। मुझे याद है, मैं बारह साल का था और सातवी कक्षा मे पढते समय मैंने "गौरवशाली जीवन और उसके उज्ज्वल आदर्श" नाम से एक पुस्तक लिख डाली थी। वह पुस्तक प्रशसा दिलाने के साथ साथ कई लोगो का कोपभाजन भी मुझे बना बैठी। कारण यह था कि मैंने व्यग्य और विनोद की शैली मे अपनी कक्षा के प्रत्येक सहपाठी का उसमे बेहद मजाक बनाया था। साथी छात्रो का तो बिगडना स्वाभाविक ही था, कुछ अध्यापक भी बुरी तरह झल्लाये। विवाद बढते-बढते मत्री जी के पास पहुँचा। मत्री जशकरण जी ही थे। उन्होने मुझे हितकारिणी सभा मे बुलाया। उनके पास जब मैं पहुँचा तो पास बैठे हुए हेडमास्टर जी ने कहा कि 'वह लडका यही है।'

जशकरण जी बोले, 'मास्टर जी, बात तो ठीक है, लेकिन आप इस बात की प्रशसा क्यो नही कर रहे हैं कि एक बारह वर्ष के बच्चे ने पुस्तक-लिखने का अद्भुत कार्य कर अपनी अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इसने इतनी सुन्दर और शुद्ध भाषा मे जो कुछ लिखा है वह तो पुरस्कार देने योग्य है।" मेरा साहस बढ गया, मास्टर जी कुछ बोल न सके।

इस घटना के दो तीन साल बाद ही मेरी प्रथम प्रकाशित रचना 'आदर्श की पगडंडियाँ' पढकर तो उन्होने बहुत ही उल्लास प्रकट किया और उसके बाद तो उन्होंने मुझे बिलकुल ही अपना साहित्यिक मित्र बना लिया।

जिन दिनो मैं कलकत्ते मे था, वे अपना 'भावना-संग्रह' छपाने आए थे। वहा उन्होंने सारी पाडुलिपि मुझे पढकर सुनाई। उस समय मैंने उनके सर्वधर्म-विचार-समन्वय के दृष्टिकोण को समझा। मेरे मन-मस्तिष्क मे भी यही दार्शनिक दृष्टिकोण पनप रहा था। 'बन्धु-समाज' नामक एक सस्था बना कर ऐसी ही विचारधारा का प्रचार करना मैं चाहता था इसलिए मैंने उनके सकलन के प्रकाशन मे काफी अभिरुचि भी ली और अपना बौद्धिक सहयोग भी दिया।

साहित्य से उनको काफी प्रेम था। बराबर कुछ न कुछ स्वाध्याय करते ही रहते थे। जो कुछ सुन्दर और उपयोगी बात सामने आती उसी को अपने सकलन मे सम्मिलित कर लेते थे। लगभग ३,००० कागजो मे उन्होंने अपने

इस अध्ययन की साक्षी छोडी है। उनके घर पर बडी सुन्दर सुन्दर पुस्तके देखने मे आई है। यह बात हमारे समाज मे थोडे ही घरो मे मिलेगी। नियमित स्वाध्याय का महत्त्व हमारे देश के नागरिको के स्वभाव मे मिटता-सा जा रहा है, इसी से हममे इतना अधिक विचार-सघर्ष प्रतीत होता है। यदि स्वाध्याय, मनन व चिन्तन हमारी दैनिक क्रियाओ का अग बन सके तो हम भी अपने बौद्धिक स्तर को ऊपर उठा ले जायें। यूरोप और अमरीका के लोगो मे यही तो खूबी है। लोग खूब पढते हैं। नतीजा हमारे सामने है। उनकी तरक्की के पीछे यही असली बुनियाद है।

इसलिए हमे अपने समाज के उन लोगो का आदर करना ही चाहिए जो जनसाधारण की अपेक्षा कुछ सुरुचिसपन्न स्वभाव के हो।

स्व० जशकरण जी को इस दृष्टि मे मैं एक आदर्श व्यक्ति मानता हूँ। विशेषकर मेरी अपनी साहित्यिक उन्नति मे उन्होने समय समय पर जैसी प्रसन्नता प्रकट की है वह मेरे मन मे सदैव उनकी स्मृति को बनाये रहेगी।

इसके अतिरिक्त लाडनू नगर के सार्वजनिक जीवन मे जो योगदान उन्होंने किया है उसके लिए भी मैं उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

हम उनके जीवन से प्रेरणा लें!

सागरमल बैंगानी

[प्रतिष्ठित व्यवसायी और साहित्य, कला, शिक्षा के उदार प्रोत्साहक]

जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। जन्म और मरण का यह क्रम तो सृष्टि के आरम्भ से चलता आया है, चलता रहेगा। किन्तु जन्म-मरण क्रम को पूरा करनेवाले इस ससार मे अनेक प्राणी तो ऐसे आते हैं जो आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु कुछ प्राणी ऐसे आते हैं जो समाज के लिए, देश के लिए, कुछ करके जाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियो मे से एक स्वर्गीय श्री जशकरणजी वैद थे।

श्री जशकरणजी से लम्बे अर्से से मेरा परिचय था। वे ओसवाल समाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। उनके जीवन मे उनका अधिकाश समय समाज के हितचिन्तन मे और नगर के हितचिन्तन मे बीता यह नि सन्देह रूप से कहा जा सकता है।

श्री जशकरणजी की सादगी, विनम्रता और सहनशीलता के कारण उनके सम्पर्क मे आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उनका परम मित्र बन जाता था। उन्होंने अपने इन सद्‌गुणो के सहारे अपने अनेक अच्छे मित्र बनाये, जिन्हे आज भी श्री जशकरणजी की मित्रता पर गर्व है।

श्री जशकरणजी विभिन्न संस्थाओ मे पदाधिकारी रहे। जहां भी रहे वहां उन्होने बडी लगन एवं कठोर परिश्रम से कार्य किया। लाडनू नगर की जिन संस्थाओ मे वे रहे उन संस्थाओ का उनके समय का रेकार्ड इस बात का साक्षी है।

श्री जशकरणजी के धार्मिक विचार वहुत ऊचे एव व्यापक थे। विभिन्न धर्मों के विद्वानो से, साधु-मुनियो से, समय-समय पर उनकी चर्चाए चलती थी। वे कहा करते थे कि मैं तो विद्वानो के पास जिज्ञासु वनकर उनसे कुछ सीखने जाता हूँ, शास्त्रार्थ करने नही। वास्तव मे उनका यह कथन सत्य था। उनके हृदय मे सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना थी। उनके मुख से कभी किसी धर्म की आलोचना सुनने का अवसर नही मिला।

वे अत्यन्त ही हसमुख एव मिलनसार थे। वहुत अधिक कार्यो मे व्यस्त रहने पर भी उन्हे सदा प्रसन्नचित्त देखा गया। एक कर्मठ कार्यकर्त्ता होते हुए भी राजनीति से वे सदा दूर रहे। सभी दलो के स्थानीय कार्यकर्ताओं मे उनकी मित्रता थी किन्तु राजनैतिक दलवन्दी को उन्होंने अपने पास फटकने तक न दिया। रचनात्मक कार्यो मे सभी को सहयोग देने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। वातें करने मे उनका विश्वास नही था। वे तो काम चाहते थे। यही कारण था कि वे जीवन भर जन-साधारण मे कार्य करनेवाले एक मूक सेवक वने रहे।

उनके निधन से ओसवाल समाज का एव लाडनू नगर का राष्ट्रीय विचारोवाला एक प्रमुख व्यक्ति उठ गया। ऐसे कार्यकर्त्ता के निधन मे सभी के दिलो मे दुख होना स्वाभाविक है।

निश्चय ही लाडनू नगर को अभी उनकी सेवाओ की आवश्यकता थी, किन्तु जन्म-मरण के क्रम को कौन रोके ? उन्हे जाना था, वे चले गये और अपने जीवन का सुनहरा इतिहास हमारे पास छोड गये।

हमारा कर्तव्य है कि हम उनके सद्गुणो से प्रेरणा लेकर समाज और देश की सेवा मे अपने आपको लगाकर उनकी याद को चिरस्थायी वनायें। हम उनके जीवन से प्रेरणा लें।

परोपकार की प्रतिमूर्ति

सुमेर विजय शास्त्री

[जनसेवी चिकित्सक; नगरपालिका एवं शिक्षण संस्थाओ के हेल्थ ऑफीसर]

यों तो ससार में अनेक व्यक्ति आते हैं और उदरपूर्ति की चिन्ता में लगे रहकर समस्त जीवन सस्ते कार्यो मे बिताकर इस संसार मे चले जाते हैं और फिर उनको याद करनेवाला किंचित् ही कोई ससार मे होता है। श्री जशकरणजी वैद यद्यपि भौतिक रूप से हमारे बीच मे से चले गये हैं, परन्तु ऐसा ज्ञात होता है जैसे उनकी आत्मा की आवाज यही हमारे आसपास गूज रही हो।

जीवन के प्रति श्री जशकरण जी का एक अपना दृष्टिकोण था। विश्वविद्यालयो की नाममात्र उपाधिया उनके पास न थी, पर उनके पास जो ज्ञान का भण्डार था उसका ज्वलन्त प्रमाण है उनकी "भावना-सग्रह"। इस पुस्तक मे उन्होंने महापुरुषो के वचनो, आप्तवाणियो और भावनाओ का अनूठा सग्रह किया है और उन सबको अपने दृष्टिकोण से देखा है। भावना क्या है, कितने प्रकार की है, अलग-अलग व्यक्तियो के लिए इसका क्या आदर्श है, आत्मचिन्तन, ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और अपरिग्रह द्वारा उसका कैसे परिपाक होता है आदि शुष्क और जटिल विषयो का उन्होने अपनी सरल, सुसस्कृत और बोधगम्य भाषा मे रोचक विश्लेषण किया है। इसे विद्वान् से लेकर साधारण अक्षर-ज्ञान वाला व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। उच्चशिक्षा की उपाधियो से रहित, केवल अनुभव व चिन्तन की पाठशाला मे पढनेवाले जशकरणजी की यह सुसम्पादन शैली देखकर आश्चर्य हुए बिना नही रहता।

श्री जशकरणजी को लोग इसी रूप मे जानते हैं कि वे ओसवाल सभा के मत्री थे और जे बी. हाई स्कूल के भी मत्री रह चुके थे, परन्तु नई

पीढी के युवको को शायद यह पता नहीं कि वे इस स्कूल से भी पूर्व होनेवाली एक स्कूल के जन्मदाताओ मे से थे, जिसका नाम था 'ओसवाल स्कूल'; जिसके प्रधान श्री प्यारेलाल जी मास्टर थे। यह ओसवाल स्कूल जो कि आगे चलकर जे बी हाई स्कूल बनी, बहुत बाद का प्रयत्न था। आश्चर्य होता है उनकी जागृति पर, जब कि प्रकाश की किरण भी किसी के पास न थी, इस महान् विभूति के हृदय मे ज्ञान व चेतना का इतना अधिक प्रकाश था।

यह वह समय था जब लोग अस्पतालो और डाक्टरो के नाम से भी इस नगर मे परिचित न थे। यदि पीडितो का कोई सहारा था तो दो एक स्थानीय वैद्य। हमारे उपासरे की तथा स्व० गुरुप्रवर श्री समर्थ विजय जी की भी उनमे गणना कर सकते हैं। उन्होंने नगर की इस रूप मे काफी सेवा की यह सर्वविदित है। परन्तु कौन जानता है कि इसके मूल मे श्री जशकरणजी वैद की प्रेरणा काम करती थी। वे इस उपासरे मे प्रतिदिन आते थे और अपनी नई योजनाओ के साथ स्वर्गीय गुरु को प्रेरणा देते थे। स्वय सेवा करना और दूसरे को सेवा की प्रेरणा देना जशकरणजी के जीवन की अपनी विशेषता थी।

श्री जशकरण जी की एक विशेषता थी उनकी धार्मिक उदारता और जिज्ञासा। नगर मे शायद ही ऐसा कोई धर्म-प्रचारक, साधु, महात्मा अथवा भिक्षु आया हो जो जशकरणजी के स्वाभाविक जिज्ञासु प्रश्नो मे स्वागत न प्राप्त कर सका हो। इस जिज्ञासावृत्ति ने उनको सभी धर्मो के प्रति अनुरक्त बना दिया। जहा यह देखने मे आता है कि एक समाज अथवा धर्म के अनुयायी दूसरी ओर आख करना भी अधर्म समझते हैं वहा जशकरणजी ने घण्टो अन्य शास्त्रो का अध्ययन किया और उनको अपनी ज्ञानराशि का अग बनाया। उनकी वाणी से समय समय पर वैदिक-साहित्य की ऋचाए व श्लोक सुनकर सुननेवाले दग रह जाते थे।

उनका साहित्य ज्ञान भी प्रशसा योग्य था। तुलसी, कबीर, दादू, मीरा के भक्ति के पदो व दोहो का सग्रह उनके पास उनके मस्तिष्क मे नकद रुपये की भाति रहता था। थोडी सी बात के दौरान मे किसी भी भक्तकवि का प्रमाण देना उनके लिए साधारण बात थी। अतिरिक्त इनके उनमे स्वय कविता सर्जन की रुचि व प्रतिभा दोनो ही थी। जैनश्रावको के लिए सुन्दर भजन व ढालें लिखना उनका रोचक विषय था। हिन्दी व गुजराती दोनो पर उनका समान अधिकार था।

सादगी का उनके साथ अटूट नाता था। जीवनभर के लिए उन्होंने अपना एक वेश निश्चित कर रखा था जिसे उन्होंने निभाया। उन्होंने उसको

5170

वेशभूषा मे रंगीनी अथवा चटक-मटक लाने की कभी चेष्टा न की और अपनी आवश्यकता को सच्चे साधु की भांति सीमित रखा। वास्तव मे वे गृहस्थ मे रहकर भी एक साधु थे।

आज की दिखावटी दुनिया मे अछूतो की गलियो मे जाकर भाषण देना और झाड़ू हाथ मे लेकर फोटो खिचवाना भले ही शान और इज्जत की चीज बन गई हो, परन्तु आज से पच्चीस तीस वर्ष पूर्व इसका विचार मात्र भी अपराध माना जाता था जब कि श्री जशकरण जी ने अछूतो के प्रति अपने विचारो का जब भी अवसर आया, खुलकर आदान-प्रदान किया। जिस किसी जवा मर्द ने अपने गिरे भाइयो को गले लगाने का प्रयत्न किया वहा श्री जशकरणजी ने आकर उसे गले लगाया। इस काम मे उन्होंने कभी अपनी आलोचना अथवा सम्बधियो की नाराजगी की परवाह न की। उनके अन्तस्तल की महानता ने उनको निर्भीक बना दिया।

जैसा उन्हें मैंने देखा

हर गोविन्द सिंह

[जे. बी हाई स्कूल के प्रधान आचार्य]

स्वर्गीय श्री जगकरण जी बैद सदा "सादा जीवन उच्च विचार" के परिपोषक थे। जब कभी भी मैंने उन्हें देखा, एक-सी सादी मारवाडी पोशाक और प्रसन्न मुखमुद्रा ही मे देखा। यह एक विशेषता ही थी कि उनकी भौंहें कभी भी बल नही खाती। साधारणत उन्हें देखने मे यही प्रकट होता था कि ये सज्जन बडे ही सत्यप्रिय एव सच्चरित्र हैं। मिलनसारिता तो उनके चेहरे से ही टपकती थी।

वैसे मेरा लाडनू मे पिछले १० वर्षों मे निवास है, पर जब से मैं जे बी हाई स्कूल मे आया तब से आपको बहुत ही निकटता से जानने लगा था। आप श्री जे बी हाई स्कूल की प्रबन्धकारिणी-समिति मे एक माननीय सदस्य थे एव सरक्षक (ट्रस्टी) भी। स्कूल के मामले मे आप इतने साफ और स्पष्टवक्ता थे कि उनका कथन मेरे दिमाग मे अकेले बैठे कई दफे घूम जाता था। मुझे खूब याद है कि एक अध्यापक के बारे मे विचार-विमर्श के समय जब सब लोग चुप हो गये तो आपने कहा कि 'आखिर हम लोग किस लिये हैं? जब हेडमास्टर जी कह ही रहे है तो हमे भी सोचना चाहिए और ऐसा मार्ग निकालना चाहिए कि जिससे हम भी असफल न हो और अध्यापक महोदय भी सन्तुष्ट हो। हमे उनकी बातो को जरूर जरूर मान लेना चाहिए।" यह थी आपकी स्पष्टवादिता, न्यायप्रियता और निडरता!

आप कमेटी मे हर बात को बडे गौर से सुनते थे और उस पर अपनी राय निष्पक्ष होकर देते थे, जो बडी कीमती होती थी। स्कूल की उन्नति तो वे

जी जान से चाहते थे। मानो स्कूल का काम भी आपके दैनिक-जीवन का एक अग हो। कोई भी ऐसा दिन नही निकलता जब मैं मिलू और मुझसे स्कूल की विभिन्न बातें न पूछें।

वैसे आप इसी स्कूल के वर्षों कोषाध्यक्ष रहे हैं और यह बडी भारी विशेषता आपके कोषाध्यक्षत्व मे रही कि कोष की यदि कभी कमी भी हुई तो वह हेडमास्टर व अन्य अधिकारियो को कभी भी महसूस नहीं होने दी। आपके मन्त्री रहते स्कूल ने भारी तरक्की की थी।

हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! लाडनू मे ऐसे न्यायप्रिय एव निष्पक्ष व्यक्तियो की जो कमी हुई है वह यथाशीघ्र पूरी करें।

मेरे पूज्य पिताजी

पूरणचंद वेद

[स्वर्गीय जशकरणजी के सुपुत्र]

नश्वर ससार का परित्याग कर और हम गिने चुने प्राणियो को अकेला छोड कर परम स्नेहालु और स्मरणीय पिताजी परलोक चले गए। सहसा ही, जब जब यह विचार उठता है कि पिताजी अब हमारे बीच नही, तो हृदय मे शून्यता-सी अनुभव हो जाती है। स्वाभाविक ही है, प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने जन्मदाता के लिए इस प्रकार का अभाव अनुभव करना। फिर मेरे पिताजी तो इतने अधिक ममतालु और दयालु थे कि उनको जीवन के किसी भी आनन्द उल्लास तक मे विस्मृत करना हम लोगो के लिए दुश्वार है। विशेषकर मेरे लिए, जो उनका एकमात्र पुत्र है, उनकी शून्यता अनुभव करने के सिवा और कर ही क्या सकता है!

पिताजी सदैव हमारे बीच मे ही रहे। उन्हे किसी प्रकार का धन-दौलत का भी आकर्षण नही था जिनसे प्रेरित होकर वे 'परदेश' जाते। जो कुछ पूर्वजो ने उनके लिए छोडा उसी मे वे सन्तुष्ट थे।

उनका अधिकाश समय स्वाध्याय, सामाजिक कार्य और कुटुम्ब की देख-रेख मे ही व्यतीत होता। उनके सतत सानिध्य मे हमे ऐसा प्रतीत होता जैसे हम किसी विशाल वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम कर रहे है। यद्यपि वे घर पर अधिक समय नही रहते थे और न घर मे या पारिवारिक जीवन मे अधिक मोह ही प्रदर्शित करते थे। किन्तु, उनकी स्थिति उस 'रखवाले' की-सी थी जो दूर बैठा चैन की वशी बजाता हो परन्तु निगाह उसकी प्रत्येक प्राणि पर टिकी हुई हो। मोह से रहित रहने पर भी हमे उनके पूर्ण स्नेह और ममता की प्राप्ति होती थी।

उनमे स्नेह और कृपा इतनी अधिक मात्रा मे थी कि हमे उनके एक ही शरीर मे पिता की गरिमा और माता का दुलार एक साथ उपलब्ध हो जाता था। बचपन मे हमारी माँ यदि बाहर गईं हुईं होती तो भी हमे वे उनकी उपस्थिति का ही सुख अनुभव करा देते।

कौटुम्बिक जीवन मे यह तो स्वाभाविक भी है और प्राय. देखने मे भी आता है कि किसी न किसी बात को लेकर कभी न कभी तो परिजनो मे विचार-सघर्ष थोड़ा या अधिक, हो ही जाता है। परन्तु मुझे ऐसा एक भी दिन याद नही आता जब पूज्य पिताजी मुझ पर नाराज हुए हो अथवा मैंने ही कभी उनको नाराज होने का अवसर दिया हो।

अपने आप मे वे बहुत ही सुलझे हुए और विचारवान पुरुष थे। विवेक उनमे भरपूर मात्रा में विद्यमान था। विवेक का वे परम आदर करते थे। अहिंसा मे उनका अटूट विश्वास था। विचारो की भिन्नता को वे मानव-प्रकृति की स्वाभाविकता मानते थे। उनके उदार व शान्त स्वभाव ने उन्हे मधुर और आकर्षक बनाने मे और भी योगदान कर दिया।

सादगीपूर्ण रहन-सहन के कारण हमे उनकी सेवा करने का कोई काम ही हाथ नही लगता था। मेरे मन मे तो जीवनपर्यन्त इस बात की खिन्नता बनी रहेगी कि शेष दिनो मे भी उन्होंने मुझे सेवा करने का अवसर प्रदान नही किया। उल्टे, मैं जब जब बीमार पड़ा हू तो उन्होंने मेरी ही सेवाएं की हैं। काश, ईश्वर मुझे कम से कम उनके आखिरी दिनो मे तो इस कृपा से वंचित न करता। जब वे बीमार हुए, मैं कलकत्ते मे था और बीमारी का समाचार पाकर जब मैं लाडनू के लिए रवाना हुआ तो मेरे पहुचने से पूर्व ही उन्होने अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

आज उनकी अनुपस्थिति मे मुझे जब भी उनके आशीर्वाद व सलाह की आवश्यकता पडती है तो मैं उनके समय समय पर कहे हुए वचनो का स्मरण कर अपना काम चलाता हूँ और विशेष ही जब मुझे किसी गभीर अवसर पर कुछ सीखना-समझना होता है तो मैं उनके हाथ से लिखे उन सैंकडो कागजो को पढता हूँ जो उन्होने अपने जीवनभर के अध्ययन के समय स्वाध्याय के प्रमाणस्वरूप लिख लिखकर सजोये। प्राय. जीवनोपयोगी सभी विषयो पर उन्होने जो कुछ भी पढा उसमे से सार-सार की तात्त्विक बातें लिखकर अपने पास रख लिया।

आज उनकी अनुपस्थिति मे हमारे लिए तो वह सामग्री ही उनकी यादगार है और उसी को पूज्य पिताजी का कृपाप्रसाद समझ कर हम सन्तोष

करते हैं। इस सामग्री से कुछ अश तो उन्होंने 'भावना-सग्रह' पुस्तक मे प्रकाशित करा दिया था। शेष के लिए मैं पुन व्यवस्था सोच रहा हूँ।

वर्तमान पुस्तक मे भी उनके 'स्वाध्याय' के कुछ अमृत-कणो को सम्मिलित करवा रहा हूँ जिन्हे पढकर पाठक-बन्धुओ को मानसिक तृप्ति प्राप्त होगी, किन्तु, सकलन की सामग्री इतनी अधिक है कि वह एकाधिक स्वतत्र पुस्तक मे ही निकलनी हितकर होगी।

मुझे इस सेवा का यदि सुअवसर मिला तो उससे मुझे प्रसन्नता ही होगी। क्योंकि अपने चिरस्मरणीय पिताजी की मेरे पास छोडी हुई इस वस्तु का जितना ही अधिक उपयोग हो, मेरे लिए उतनी ही गौरवास्पद बात है।

पिताजी ने सार्वजनिक सेवा मे अपना जीवन व्यय किया। सेवा उनका एक व्रत था। जितना भी वे कुटुम्ब, समाज व नगर के लिए कर सकते थे, नि स्वार्थ भाव से कर गए। उनके चरण चिह्नो पर चल सकने की मुझ मे तो सामर्थ्य भी नही। फिर भी यदि मैं उनके आदर्श को सामने रखकर चलूगा तो मेरा कल्याण ही होगा।

खेद यही है कि उन्होंने मेरे लिए जितना किया उनका शताश भी उनके लिए मैं नही कर पाया। वे जहा तक बन पडता था, सेवा करते ही थे, लेते नही थे। अपने ज्ञान और अनुभव का अन्य लोगो को रसास्वादन कराना उनकी विशेष अभिरुचि थी। मुझे भी पढने-लिखने के लिए उन्होने सदैव प्रेरित किया। यद्यपि, मैं उनकी सीख का अधिक उपयोग नही कर पाया। उनकी छत्रछाया मे रहकर मैंने देखा कि वे बडे ही सयमी, बात और समय के पाबन्द, सबके प्रति समद्रष्टा, गुणग्राही और प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। ईश्वर ने उनको हमारे बीच थोडा ही रहने दिया। वह अपनी वस्तु के साथ मनचाही क्रीडा करता है। किसी का वश नही।

अन्त मे मैं उन्हे अपनी विनम्र श्रद्धाजलि एव शतश प्रणाम अर्पित करता हूँ। ऐसे स्नेहालु पिता सभी को प्राप्त हो, यही प्रभु से प्रार्थना है।

सार-संकलन

[अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नम]

—पूर्ववर्ती पृष्ठो मे अनेक स्थलो पर यह उल्लेख हुआ है कि स्वर्गीय जश-करणजी ने अपने अध्ययन-प्रसग मे लगभग ३००० पृष्ठो का साहित्य स्वय अपनी हस्तलिपि मे सकलित किया था। उसी में से हम थोडा-सा अश स्मारक रूप मे उनके इन सस्मरणो के साथ सलग्न कर रहे हैं। इससे उनकी भाव-भावना का परिचय मिलने के अतिरिक्त उनके सतत अध्यवसाय, कठोर परिश्रम एव आदर्श-प्रवृत्ति की भी जानकारी मिलेगी।

उन्होने विभिन्न विषयो से तात्त्विक और सारगर्भित बातो का सचय किया था। अध्ययन की मनोवृत्ति वाले पाठको का इससे काफी लाभ हो सकता है।

आगे के पृष्ठो मे हमने जिन शीर्षको का चयन किया है वे आत्म-कल्याण, परदु खकातरता, सेवा, शील, सयम, धर्म, दर्शन, विश्वबन्धुभाव आदि से सम्बन्धित विषय है। आज के सतप्त जगत् एव मानवो की यही सर्वप्रधान आवश्यकता है। अध्यात्म और भौतिक सघर्ष के मध्य मनुष्य क्या करे, यह एक पहेली है। इसमे जो अधिक से अधिक समाधान समझ मे आता है, वह यह तो सभवत निर्विवाद ही है कि मनुष्य को सदैव नियमित स्वाध्याय करना चाहिए, सद्विषयो का चिन्तन करना चाहिए, दयामय और सेवामय बनना चाहिए, सबके प्रति समानता बरतनी चाहिए। ऐसी मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए यह 'सकलन' उपादेय सामग्री है।

इस सामग्री से हमारे मन-मस्तिष्क को इस दिशा की ओर अग्रसर होने मे बल और प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। सम्पूर्ण सामग्री से चयन करने मे मैंने इस बात को प्रधानता दी है कि थोडे-थोडे अश मे दिवगत आत्मा की अभिरुचि के सभी विषयो का समावेश हो जाय।

इसी तरह भविष्य मे भी हम चाहते है कि यदि सभव हो तो शेष सामग्री को पुन प्रकाश मे लाया जाय।

जिन सद्‌ग्रन्थो मे अथवा विद्वानो की अमूल्य कृतियो से ये अंश उद्धृत हुए है उनका समीचीन विवरण उपलब्ध न होने से हम उनका उल्लेख नही कर पा रहे है, परन्तु हम उनके हृदय से आभारी है। जिस प्रकार सूर्य, चंद्र, वायु और पृथ्वी समस्त प्राणियो को अपना प्रकाश, शीतलता, गति और पोषण निर्लेप-भाव से प्रदान करते है वैसा ही स्वरूप और दृष्टिकोण साधको का माना गया है। एतदर्थ उनके द्वारा प्रसूत ज्ञानामृत का सभी पान करें यह सहज स्वीकार्य है और उनका धन्यवाद भी स्वाभाविक ही है।

—शंकरलाल पारीक
सम्पादक

भावना-संग्रह का संक्षेप

पंचशील भावना

१ जैसे सूर्य के उदय होते ही सब स्थानो का अंधकार-नाश हो जाता है उसी प्रकार पवित्र भावना से सब दोष, दुर्गुण, दुःख और पापो का नाश हो जाता है।

२ आत्म-कल्याण की इच्छा हो तो हमेशा उत्तम भावना का चिन्तन करें जिसके द्वारा सदाचार प्राप्त होकर इस लोक-सम्बधी सब दुःखो का नाश हो।

३ सब कार्य प्रथम भावनामय होकर बाद मे कर्तव्य रूप मे परिणत होते हैं। यदि शुभ भावना होगी तो शुभ-कर्तव्य व शुभ-फल ही मिलेंगे इसलिए इस आत्म-जागृतिभावना को नित्य नियम से वाचन-मनन करना चाहिए।

४ जगत मे सुखी रहना हो, तो अपना गुण व दूसरों के दोषों को भूल जाओ और अपने दोष व दूसरो के गुणो को प्रकट करो। शुद्धभाव की यह क्रिया इस लोक और परलोक मे सच्चा सुख देनेवाली है।

५. पढना सो भोजन करना है, मनन करना सो पचाना है, चारित्र मे लाना सो धातु-उपधातु बनाकर शरीर पुष्ट करने के तुल्य आत्मसामर्थ्य प्रकटाना है।

मुक्ति-पथ

सुख का कारण निराकुलता (इच्छा रहित होना) है। पूर्ण निराकुलता मोक्ष मे है, इस कारण इसे मोक्षमार्ग मे लाना चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्षमार्ग निश्चय और व्यवहार रूप दो प्रकार के हैं। आत्मा का श्रद्धान ज्ञान और उसी मे लीन होना निश्चय रूप से मोक्षमार्ग है, जीवादि नौ पदार्थों का और सच्चे देवगुरुधर्म का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है, इनको धारण करना चाहिए। सम्यग्दर्शन धर्मरूपी वृक्ष की जड है और धर्मरूपी घर की नीव है, इसलिए सबसे पहले इसको धारण करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन के विना जो ज्ञान होता है वह मिथ्या ज्ञान होता है, सम्यक्त्व के होते ही वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है, सम्यग्ज्ञान होने से ही आत्मज्ञान होता है, आत्मज्ञान होने से ही अवधि मन पर्यव वा केवलज्ञान होता है। इसलिए सम्यग्ज्ञान का आराधन सबको करना चाहिए। उसका उपाय है सुसाधुओ की सगति और उनके वचनो का वार वार मनन करते रहना। सम्यग्ज्ञानी जितने कर्मों की निर्जरा सहज ही कर लेते हैं, उतने कर्मों की निर्जरा अज्ञानी करोडो जन्म मे भी नही कर सकता।

आत्म-शोधन

जैसे तपाने से सोना स्वच्छ हो जाता है और उसका मैल निकल जाता है, वैसे ही आत्मा का कर्म रूपी मैल तप द्वारा तपाई जाने पर निकल जाता है और आत्मा निर्मल हो जाती है। वह तप दो भेदो मे विभक्त है। वाह्य और आभ्यन्तर। वाह्य तप ग्रहण करने से अन्तरग तप की सिद्धि होती है। सवर के होने पर आगामी कर्म नही बाँधता और पूर्व कर्म आप ही आप निर्जरा रूप हो कर क्षय होते हैं और आत्मा मोक्षरूपी निधि को पाता है। इन वातो का सदैव चिन्तन करें।

धर्मरहित जीवित मनुष्य मुर्दे के वरावर है और धर्मयुक्त मृतक पुरुष चिरजीवी होता है, इसमे कोई सदेह नही है।

आध्यात्मिक धर्म अहिंसा-लक्षणयुक्त है। इसके सत्य शौचादि अग हैं। जव तक इस धर्म की प्राप्ति नही होती, तव तक जीव निरन्तर ससार मे परि-भ्रमण करता है और इस धर्म का सयोग मिल जाने से अनेक सासारिक सम्पदाओ को भोग कर मुक्ति (मोक्ष) मे पहुँच कर अनन्त आत्मिक सुख को प्राप्ति करता है।

जव तक अपना शरीर पुष्ट और नीरोग है और वृद्धावस्था दूर है, जव तक इन्द्रियो की शक्ति नही घटी है और आयु भी क्षीण नही हुई है तव तक बुद्धिमान् जनो को उचित है कि अपने कल्याण का यत्न भली भाति कर लें। अन्यथा जव घर जलने लगेगा तव कुआ खोदने से क्या लाभ होगा? इस प्रकार धर्म का वर्णन और फल का चिन्तन करते रहना चाहिये।

सामायिक भावना

हे देव ! मैं समस्त जगत् के जीव मात्र मे मैत्री, गुणीजनो के साथ हृदय मे प्रेम, और जो इस ससार मे रोग, शोक, भूख, पिपासादि बाधाओं से दु.खित है, उनके लिये अन्तरंग मे दया भाव, जो विपरीत स्वभाव वाले दुर्जन, क्रूर, कुमार्गीयमिथ्यात्वी पुरुष है उनके साथ मध्यस्थ भाव चाहता हूं।

प्रभो ! समस्त ममत्वबुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुःख मे, सुख मे, वैरियो अथवा बन्धु-समूह मे, इष्ट-वियोग-अनिष्ट-सयोग मे, गृह मे, वन मे, हमेशा ही राग-द्वेपरहित समान रूप हो।

देव ! यदि मुझ मे प्रमादपूर्वक इधर उधर चलते हुए एकेंद्रियादिक प्राणी नाश किये गये हो, खण्डित किये गये हो, कोई मसल दिये गये हो, पीडित किये गये हो तो मेरा वह सारा दुष्कार्य मिथ्या हो।

ससार के दु खो का कारण, जो कुछ भी पाप मैंने मन, वचन, काय और कषायो द्वारा किया हो मैं निन्दा, आलोचना और घृणा करता हूँ।

मैं सब जीवो को क्षमादान करता हूँ और सब जीव मुझे क्षमादान करें। सर्व प्राणी मेरे मित्र है और मेरा किसी के साथ वैर नही।

हे देव ! मनुष्य जन्म, सत्यपुरुषो के वचनो का श्रवण, उसकी प्रतीति और धर्म का आचरण करना, यह चार बोल मिलने दुर्लभ है। अत मुझे धर्म का आचरण अवश्य हो।

क्रोध से प्रीति का नाश, मान से विनय का नाश, माया से मित्रता का नाश और लोभ से सर्व गुणो का नाश होता है। मैं इन दुर्गुणो से अलग होऊँ।

क्रोध को शान्त भाव से और लोभ को सन्तोष भाव से जीतने की जो शक्ति है वह मुझे प्राप्त हो।

हे प्रभो ! धर्म का मूल विवेक रखना अत्यावश्यक है। मुझ मे ऐसा उपयोग सदा बना रहे।

हे देव ! मतभेद के विवाद को दूर कर यदि आत्मा और पुद्गल का पृथक्करण करके शान्त भाव से अनुभव किया जावे तो मोक्ष मार्ग सरल है ऐसी मेरी भावना जागृत रहे।

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवो को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर जिन, हरि हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो ॥ १ ॥
विषयो की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं,
निज-पर के हित-साधन मे जो, निशि-दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःखसमूह को हरते हैं ॥ २ ॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उनही जैसी चर्यामे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ ॥ ३ ॥
अहंकार का भाव न रक्खू, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहा तक इस जीवन मे, औरो का उपकार करूँ ॥ ४ ॥ *
मैत्रीभाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवो पर मेरे, उरसे करुणास्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥ ५ ॥

---

* इसी भावना को स्व० जमकरणजी ने अपना आदर्श बनाया था। रचना प० जुगलकिशोरजी मुख्तार की है।

गुणीजनो को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
वने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मै, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥ ६ ॥

कोई वुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखो वर्षो तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥ ७ ॥

होकर सुख मे मग्न न फूलें, दुख मे कभी न घवराये,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन, दृढ़तर वन जावे,
इष्टवियोग - अनिष्टयोग मे, सहनशीलता दिखलावे ॥ ८ ॥

सुखी रहें सव जीव जगत के, कोई कभी न घवरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म-फल सव पावें ॥ ९ ॥

ईति-भीति व्यापे नहिं जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत मे, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहि, कोई मुख से कहा करे।
वनकर सव 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नतिरत रहा करे,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सव दुख-संकट सहा करे ॥११॥

विद्यार्थी-भावना

"हे परमात्मा ! मैं आपको भावपूर्वक नमस्कार करता हू । आपके समान मेरी आत्मा मे भी अनत ज्ञान, अनत दर्शन, आत्मिक सुख और अनत आत्मिक शक्ति ये चार मुख्य गुण भरे है । परन्तु अज्ञान आदि ग्यारह दोपो के सेवन करने से, मेरे यह गुण मलीन हो गये । अब मुझे यह उत्तम मनुष्य-जन्म मिला हुआ है । मैं इन सब दोपो को छोडकर आपके तुल्य बनने का पुरुपार्थ करूगा ।"

दोषों का नाश करने के उपाय

१. सत्य ज्ञान से अज्ञान का नाश करूगा ।
२ सद्विवेक से अधता का नाश करूगा ।
३ अहिंसा से हिंसा को छोडूगा ।
४ सत्य से असत्य को छोडूगा ।
५. ईमानदारी से चोरी छोडूगा ।
६ ब्रह्मचर्य से विपय-वासना का नाश करूगा ।
७ सत पुरुपार्थ से तृष्णा का नाश करूगा ।
८ क्षमा से क्रोध को शान्त करूगा ।
९ विनय से गर्व छोडूगा ।
१० सरलता से कपट छोडूगा ।
११. सतोप से तृष्णा का नाश करूंगा ।

इस प्रकार इन ग्यारह गुणो द्वारा ग्यारह दोपो का नाश करके हे प्रभो ! मैं आपके तुल्य बनूगा ।

द्रव्य (धन) पैदा करने के लिए अथवा बाह्य लाभ ही के लिए मैं नहीं पढता हू । परन्तु शरीर, मन और आत्मा की उन्नति कर स्व-पर का कल्याण करने मे समर्थ बनने के लिए मैं पढता हू ।

सभी बुरी आदतें, दुर्व्यसन, चाय, कोफी, तमाखू, बीड़ी, गाजा, भग, आदि नशे की चीजे, मसालेदार खूराक, नाटक, सिनेमा, वेश्या-नृत्य, कुरुचि पैदा करनेवाले उपन्यास आदि शत्रुओ से मैं सदा बचूगा। सदाचारी, सयमी और उत्तम चरित्रवान बनूगा तथा जीवनसुधार की ही उत्तम पुस्तके सदा प्रेम से पढूगा।

मैं विद्यार्थी हू मुझे पढना है अर्थात् मुझे सीखकर शिक्षा पाना है। शिक्षा किसे कहते है ? जिससे बुद्धि का विकास हो, जो कैसा भी अवसर क्यो न हो, सद्बुद्धि उत्पन्न कर सच्चा मार्ग दिखावे, जो हित और अहित दोनो को पहिचानना सिखावे और उनमे से अहित तजकर हित ही ग्रहण करने की बुद्धि पैदा करे और जो निर्दोष आनन्द और सच्चा सुख प्राप्त करावे, उसी का नाम शिक्षा है।

शिक्षा तीन प्रकार की है—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक।

(१) मैं शारीरिक शिक्षा लूगा अर्थात् उपयुक्त नियमित व्यायाम आदि से शरीर को कसूगा और अपना प्रत्येक काम स्वत. मन लगाकर करना सीखूगा। शरीर को बल बढाने का साधन मान हर्षपूर्वक श्रम (मेहनत) का काम करूगा।

(२) मैं मानसिक शिक्षा लूगा अर्थात् प्रत्येक बात मे मुझे कौन सी हित-कारक है और कौन सी अहितकारक, यह जानना सीखूगा तथा मानसिक शिक्षा के लिए मैं अच्छी पुस्तके, पत्र-पत्रिकाओ आदि का वाचन-मनन करूंगा और सत्सग करूगा। स्कूलो और कालेजो की शिक्षा मानसिक शिक्षा प्राप्त करने का साधन है। केवल डिग्रिया पा लेना और अपने सब समाज और देश का हित न सोचना अक्षर-पाण्डित्य है, शिक्षा नही है। शिक्षा वह है जो सदाचारी और परोपकारी बनावे। स्वार्थी बनानेवाली शिक्षा कुशिक्षा है। मैं यह बाते खास ध्यान मे रखूगा।

(३) मैं आत्मिक शिक्षा लूगा अर्थात् आत्मा को अजर-अमर और ज्ञानादि अनत गुणो का भण्डार मानूगा और अहिंसा, सत्य, प्रामाणिकता, ब्रह्मचर्य, संतोष, क्षमा, दया, विनय, संयम आदि गुण प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करूंगा।

ऐसी शिक्षाए प्राप्त करूंगा तभी शिक्षित कहलाने योग्य बनूगा और ये ही शिक्षाएं मुझे सच्चा सुख देंगी।

इस प्रकार शिक्षा प्राप्त कर मैं बचपन से ही निर्भय, सादा, पुरुषार्थी,

धर्म-श्रद्धावत, दयालु, सेवाभावी, सत्यवादी, ब्रह्मचारी, सन्तोषी, उदार और विषयसयमी बनूगा ।

माता, पिता, गुरु, वृद्धजन आदि प्रत्येक पुरुष को आदर की दृष्टि से देखूगा और उनकी सुशिक्षानुसार व्यवहार करूगा । कभी सामने नहीं बोलूंगा । मैं सच्चा होऊगा, तो पहिले उनको शान्त करके फिर सत्य निवेदन करूगा ।

उपरोक्त रीति से शरीर, बुद्धि और आत्मा का विकास कर मनुष्य जन्म को देवो से भी पूजनीय बनाने का मैं हमेशा प्रयत्न करूगा ।

ब्रह्मचारी विद्यार्थी-जीवन ही जीवन का सुखमय समय है। यह जीवन जितना पवित्र और लम्बा होगा उतना ही सुख और मोक्ष समीप रहेगा। इसलिये मैं ब्रह्मचारी जीवन ज्यादा लम्बा बिताऊगा ।

विनय से विद्या प्राप्त होती है और विद्या की सफलता सच्चरित्रता से होती है इसलिये मैं मन, वचन और कार्यों से गुरुजनो का मान रखूंगा ।

विकार दूर करनेवाला ज्ञान ही विद्या है । यह शरीर, मन और आत्मा के मल, दोषो और विकारो को ढूंढकर निर्दोष तथा नीरोग बनाता है ।

खूब भूख लगे तब खूब चबाकर किया हुआ सादा आहार, ब्रह्मचर्य और उपवास शरीर के विकार (रोग) को दूर करते हैं । अच्छी भावनाए, अच्छा पाठ, मनन और सत्सग तथा विषय-वासना पर सयम, यह मन के दोष को दूर करते हैं और तत्वज्ञान, आत्म-स्वरूप का ज्ञान एव आत्मा को दोषो से बचने का मार्ग दिखाते हैं और सच्चरित्र आत्मा को शुद्ध करते हैं । ऐसी सद्विद्या मैं प्राप्त करूगा ।

हमारा आदर्श

सुनिश्चय, गम्भीरता, मौन, विचारशीलता, निर्भयता, अहिंसा, सत्य, प्रामाणिकता, ब्रह्मचर्य, सन्तोष, संयम, क्षमा, धैर्य, सुपुरुषार्थ जीवन का आदर्श है।

इसलिए आलस्य तजो, विचार के बोलो, निन्दा त्यागो, गुण देखो, भूल मत छिपाओ।

बुरे विचार ही नरक, शुभ विचार ही स्वर्ग, विचार ही परम ज्ञान, सत्संग परम लाभ, सन्तोष परम धन और समभाव परम सुख है।

क्रोध समान विष नहीं, क्षमा समान अमृत नहीं, गर्व समान शत्रु नहीं, विनय समान मित्र नहीं, कुशील समान भय नहीं, शील समान निर्भय नहीं, लोभ समान दुःख नहीं, सन्तोष समान सुख नहीं, अनियमित काम काम नहीं।

समाज-संचालकों की भावनाएं

राजा, वायसराय, गवर्नर, एजीजी, कलक्टर, ठाकुर, जागीरदार, रईस, तहसीलदार आदि राज्य कर्मचारी प्रजा की सेवा स्वीकार करने के पद हैं। प्रजा अपने उपकार के लिये सब कुछ देने को तैयार है, इस नीति का दुरुपयोग कर खूब धन-सञ्चय करना तथा विषयविलासी बनना ऐसा अनियमित काम करना सो धिक्कार है। इन सब दोषों से गम्भीर दुःख उठाने पड़ेंगे इसलिये अनीतिमय कार्य सर्वथा त्यागूंगा, यही भावना रहे।

२ वकील, बैरिस्टर, सालीसीटर, एडवोकेट आदि के धंधे समाज के कुसंप, कलह और झगडे मिटाने के लिये हैं। जो मनुष्य अहंकार, ईर्ष्या और धन-लोभ के वश परस्पर लडकर विनाश पाते हैं उनको शान्ति से हेतु तथा प्रमाण देकर समझाना और सत्य और न्याय में स्थिर करना कर्तव्य है। आज यह धन्धे केवल खूब धन कमाना, विलास भोगना आदि अनैतिकता के कार्य बन गये हैं सो धिक्कार हैं। इनसे अलग रहने की भावना रक्खें।

३. मुन्सिफ, न्यायाधीश, पंच आदि धन्धे सत्य प्राप्त कराने में सहायक हैं। यदि लोभवश अथवा बिना अनुभव से किसी को हानि पहुंचाता हूं तो धिक्कार है। मैं सत्य न्याय देने की कोशिश करूंगा।

४ वैद्य, हकीम, डाक्टर आदि धन्धे प्रजा के रोग दूर करने के लिये हैं। अब इनके द्वारा अनीति से धन कमाना शुरू कर दिया सो धिक्कार है। अब सदा के लिये पवित्र धर्म पालन करना चाहिये।

५ नौकरी करने वाले विचारें कि मैं यह नौकरी धन, सञ्चय, मान बडाई या हकूमत के लिये नहीं करता। परन्तु समाज रूपी महातन्त्र चलाने में अनेक सहायक चाहिये जिसमें मैं भी एक हूं। हीन समझना, काम चित्त लगा के नहीं करना, खुद योग्य न होते हुए वह काम करने को तैयार होना, ईर्ष्या करना आदि सो धिक्कार है ऐसे सब दोष छोड़ें।

६. व्यापारी लोग विचारे कि व्यापार का अर्थ दूसरो की अडचने दूर करना है। जो चीज जिस समय चाहिये वे आसानी से पूरी करे सो व्यापारी है। थोडे नफे मे नीति, सत्य और ईमानदारी से व्यापार करे। धन सग्रह करे सो लुटेरा है, ऐसी भावना रख कर अन्यायी न बने।

७. जगत मे अनेक कार्य है। सबके अपने अपने कार्य नीतिपूर्वक विवेक बुद्धि से करने से शान्ति रहती है। उसमे अनीति और लोभ होना दुखमय होता है। ऐसा करना धिक्कार है।

८. जगत मे चार वर्ण सर्वत्र हैं। ज्ञान, बुद्धि, विवेक, धरे धरावे, पढ़े पढावे सो ब्राह्मण, पुरुषार्थ-प्रेमी, न्यायरक्षक सो क्षत्रिय, जरूरी वस्तु, अन्न वस्त्रादि उत्पन्न करे और व्यवस्था पूर्वक सबको पहुँचावे सो वैश्य, शुद्ध-भाव से सेवा करे सो शूद्र। सब अपने अपने कार्य मे सच्चे बनें यही भावना हो।

आध्यात्मिक-शिक्षा

(सनातनधर्म से)

१ जो अशुद्ध दर्शन से, नेत्रो और भोगो मे इन्द्रियों को बचाता है, नित्य ध्यानयोग से अन्त करण को निर्मल रख कर अपने चरित्र को शुद्ध करता है उसके ज्ञान मे कमी नही।

२ सदा विनय और प्रेमपूर्वक परमात्मा का भजन करो, धर्म का अनुसरण और पूज्य भाव से सिद्ध पुरुषो का समागम करो, सेवा और सम्मान पूर्वक साधु जनो का सत्सग करो, प्रफुल्ल वदन, दयालु हृदय और नम्र वाणी से सब के साथ वर्ताव करो इसमे भला है।

३ सासारिक पदार्थो के पीछे दौडना छोडना, सासारिक विषयो से विरक्त होना, परमात्मा-योग के मार्ग को पकडना, और निर्मल ध्यान ध्याना यह ऊपर चढने की सीढियाँ है।

४. प्रायश्चित-आत्मग्लानि, दूसरी बार पाप न करने का निश्चय और आत्म-शुद्धि, जिस पाप के आरम्भ मे भय और अन्त मे प्रायश्चित होना है वह पाप भी साधक से दूर होता है।

५ नदी की-सी दानशीलता, पृथ्वी की-सी सहनशीलता और सूर्य की-सी उदारता उत्तम जनो को बनानी चाहिये।

६ जिन लोगो को इन तीन वस्तुओ मे मूर्छा नही है वह सात्विक वृत्ति का मनुष्य है—स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्र, और धनवानो का सहवास, व्यवहार शुद्धि का ही उपाय है—धीरज और प्रेम।

७ सग से ही आदमी अच्छा-बुरा बनता है। केवल मनुष्य का नही इन्द्रियो के विषय मात्र का भी अच्छा बुरा सग होता है इसलिये अच्छे सग का सेवन करो, बुरा सग सदा छोडो।

कान से बुरी बात मत सुनो, आखो से बुरी चीजे मत देखो, जीभ से बुरी बाते मत कहो, हाथ से बुरा काम मत करो, पैर से बुरी जगह मत जाओ, मन से बुरा चिन्तन मत करो और बुद्धि से बुरा विचार मत करो, तुम सब बुराइयो से आप ही छूट जाओगे।

८ जब तक संसार के भोगो की चाह है तब तक मनुष्य कभी सुखी नही हो सकता, जितनी चाह बढती है उतना ही दु:खो का विस्तार होता है। परन्तु ज्यो ज्यो चाह पूरी होती जाती है त्यो त्यो चाह बढती है। दु:खो से छूटना हो तो चाह छोडो, दु:खो को कम करना हो तो चाह कम करो, चाह कम करनी हो तो चाह पूरी करने की इच्छा का त्याग कर दो, चाह रूपी आग मे विषय रूपी घी की आहुति मत दो। उस पर सन्तोष का शीतल जल छोड कर उसे बुझा दो।

९. विषय सुख से निराश होना सच्चे सुख की प्राप्ति की ओर बढना है, विषयो की चिन्ता छूटे बिना सच्चे सुख का चिन्तन नहीं हो सकता, वे पुरुष वास्तव मे भाग्यवान हैं जो विषय सुख से वंचित है।

१०. लक्ष्मी चचल है, आयु जल के बुद् बुद् के समान और यौवन बिजली के चमत्कार के समान अस्थिर है इसलिये धर्म का सेवन करो।

११ समस्त प्राणियो को अपने समान, पर-धन को पत्थर के समान और पर स्त्री को माता के समान समझना चाहिये।

१२. विद्या आत्म-ज्ञान के लिये, धन दान के लिये और शक्ति दूसरो की रक्षा के लिये होनी चाहिये।

१३ सब के साथ प्रेम रखो, दूसरो की निन्दा न करो किन्तु गुण प्रकट करो और प्रिय वचन बोलो। सत पुरुषो की सगति करो, नीचो और कुव्यसनियो से सदा दूर रहो, धर्म की जड दया और पाप की जड कुव्यसन है।

आध्यात्मिक-शिक्षा

(वेदान्त से)

१ जहा आपका धन है वही आपका हृदय और मन भी होगा। फिर आप अपने मन को ईश्वर पर कैसे लगा सकते है ? धन आपका शत्रु है। वह मन को चचल कर देने वाला है, आध्यात्मिक धन की खोज कीजिये जिसे चोर चुरा भी नही सकते।

२ जिस मनुष्य मे कामनाए और वासनाए भरी हुई हैं वह कभी मानसिक शान्ति नही प्राप्त कर सकता। अभिमानी और लोभी सदा अशान्त रहते हैं।

३ अभिमानी धनिक जरा जरा सी बात मे चिडचिडाने लगता है। जब उसका कोई विरोध करता है तब वह बडा क्रोध करता है परन्तु जिस विनम्र आध्यात्मिक मनुष्य ने अपने आपको समस्त वाह्य पदार्थों से अलग कर लिया है, जो आत्मा मे निवास करता है और जिसने अपने अहकार का नाश कर डाला हैं वह अपमानित, लाछित और प्रताडित होने पर भी निर्विकार बना रहता है। उसमे आत्मबल होता है अत वह सदा पर्वत के समान दृढ होकर खडा रहता है।

४ शासन कौन कर सकता है ? जो आज्ञा पालन करना जानता है। नेता कौन बन सकता है, जिसके पास दिव्य प्रकाश है। एक अधा दूसरे अधे का मार्ग-प्रदर्शन नही कर सकता। दूसरो पर विजय कौन प्राप्त कर सकता है वही जिसने अपने मन और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर ली है।

५ जिस मनुष्य मे ईर्षा है और जो बार बार क्रोध करता है वह भला शाश्वत शान्ति कैसे प्राप्त कर सकता है ? विनयी धन्य हैं जो सदा मन की शान्ति का अनुभव करते है।

६ यदि आप सदा मृत्यु का स्मरण करते रहे कि जीवन जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है या बिजली की चमक की तरह क्षणस्थायी है, तो सारे झगडो का अन्त हो सकता है। आप क्रोध पर नियन्त्रण कर सकते हैं।

७. दोष तो स्वर्ग मे भी मिलेंगे। ज्योंही सुख के निमित्त निर्धारित समय समाप्त हो जायगा त्योंही आपको फिर मर्त्यलोक मे आना पडेगा। फिर स्वर्ग मे ईर्षा-द्वेष भी है। जब तक ईर्षा है तब तक मानसिक शान्ति प्राप्त नही हो सकती।

८ ससारी मनुष्यो का हृदय अपने प्रति स्वाभाविक अनुराग, निर्दयता, क्रोध, ईर्षा और लोभ के कारण कठोर हो जाता है। हृदय को सहानुभूतिपूर्ण सेवा, दया, सद्धर्म, प्रेम, स्वार्थत्याग, दान और उदारता आदि के निरन्तर अभ्यास से नम्र बनाना चाहिए।

९ यदि तुम्हारे मन मे कोई बुरा विकार पैदा हो तो प्रयत्न करके उसे बाहर निकाल दो, इतना ही नही, ऐसा प्रयत्न करो कि मन मे बुरे विकार उत्पन्न ही न हो, सद्गुणो को उन्नत करो, दूसरो का भला करो, अपने सद्गुणो की वृद्धि करो अपने सत्कार्यो की सख्या बढाओ, तुम जल्दी मुक्ति प्राप्त कर लोगे।

१०. सदाचार से कीर्ति, चिरायु, सम्पत्ति और सुख प्राप्त होता है, वह क्रमश मोक्ष प्राप्त कराता है।

११. ईर्षा मन को अशान्त करने का बहुत बडा कारण है। चुगली खाना, झूठ बोलना, निन्दा करना, कलक ढूढना, उत्पात करना आदि सब का जन्म ईर्षा से होता है। इसलिए सावधान रहो। आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर ईर्षा वृत्ति को नष्ट कर दो ईर्षालु मनुष्य को एक मिनट के लिए मानसिक शान्ति नही मिलती।

आध्यात्मिक दोहे

सन्तन की सेवा किया, प्रभु रीझत है आप।
जाका बाल खिलाइये, ताका रीझत बाप ॥ १ ॥
वर्ष दिनों की गाठ को, ओछव गाय बजाय।
मूरख नर समझे नहीं, वर्ष गाठ को जाय ॥ २ ॥
पान झरत ही इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुडे कब मिले, दूर पडेंगे जाय ॥ ३ ॥
तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र एक बात।
इस घर एही रीत है, एक आवत एक जात ॥ ४ ॥
करज बिराना काढके, खरच किया बहु दाम।
जब मुद्दत पूरी हुई, देना पडसी दाम ॥ ५ ॥
बिना दिया छूटे नहीं, यह निश्चय कर मान।
हसहस के क्यों खरचिया, दाम बिराना जान ॥ ६ ॥
जब लग जिसके पुन्य का, पहुँचे नहीं करार।
तब लग उसको माफ है, अवगुन करे हजार ॥ ७ ॥
गुरु कारीगर सारिसा, टाँची वचन विचार।
पत्थर से प्रतिमा करै, पूजा लहै अपार ॥ ८ ॥
पुन्य खीन जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझे वन की लाकडी, प्रजले आपो आप ॥ ९ ॥
जा पै जैसी वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वाका बुरा न मानिये, वो लेन कहा से जाय ॥१०॥
पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दुबी ना रहे, रुई लपेटी आग ॥११॥

इस अपार ससार मे, शरण नही अरु कोय ।
याते तुम पद भगत ही, भक्त सहाई होय ॥१२॥
अवसर बीत्यो जात है, अपने वस कछु होत ।
पुन्य छता पुन्य होत है, दीपक दीपक ज्योत ॥१३॥
कहा भया घर छाडके, तज्यो न माया सग ।
नाग तजी जिमि काचली, विप नहि तजियो अग ॥१४॥
सुख दुख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय ॥ १५ ॥
दो वातन को याद रख, जो चाहे कल्याण ।
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान ॥१६॥
तेरे भाये जो करो, भलो बुरो ससार ।
नारायण तू बैठ के, अपनो भवन बुहार ॥१७॥
वुरा जो देखन मे चला, वुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल ढूढा आपना, मुझसा बुरा न कोय ॥१८॥
माया छाया एक सी, विरला जाने न कोय ।
भगतो के पीछे पडी, सनमुख भागे सोय ॥१९॥
माया तो ठगनी भई, ठगत फिरे सब देश ।
जो ठगने ठगनी गई, ता ठग ठग आदेश ॥२०॥
माया मरी न मन मरयो, मर मर गयो शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर ॥२१॥
चाह चमारी चूहडी, तू नीचन की नीच ।
मैं तो पूरन ब्रह्म था, होती तू नही बीच ॥२२॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा वेपरवाह ।
जाको कछु न चाहिए, सो जग शाहनशाह ॥२३॥
हाड जले ज्यू लाकडी, केश जलै ज्यू घास ।
सब जग जलता देखके, भया कबीर उदास ॥२४॥
झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मनमोद ।
जगत चवीना काल का, कछु मुख मे कछु गोद ॥२५॥
खेती पाती वीनती, परमेश्वर को जाप ।
परहाथा कीजे नही, अड़कर कीजे आप ॥२६॥
धन भोगो की खान है, तन रोगो की खान ।
ज्ञान सुखो की खान है, दुःख खान अज्ञान ॥२७॥

भेद ज्ञान साबु भयो, सम रस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आतमा, धोवै निज गुण चीर ॥ २८ ॥
सरवर तरुवर सन्तजन, चौथो वर्षे मेह।
परमारथ के कारणे, चारु धारी देह ॥ २९ ॥
भरम परा तिहुँ लोक मे, भरम बसा सब ठाँव।
कहे कबीर पुकार के, बसै भरम के गाँव ॥ ३० ॥
पानी केरो बुदबुदो, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यो तारा परभात ॥ ३१ ॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पाटन यह गली, बहुरि न देखो आय ॥ ३२ ॥
अलि मृग मीन पतग गज, एक एक आधीन।
वे नर फिर कैसे जिवे, जो पाचो आधीन ॥ ३३ ॥
क्षमा तुल्य कोई तप नही, सुख सन्तोष समान।
नही तृष्णा सम व्याधिहु, धर्म दया सम ग्रान ॥ ३४ ॥
तृष्णा वैतरणी नदी, यम है क्रोध जु दोष।
कामधेनु विद्या सही, नन्दन वन सन्तोष ॥ ३५ ॥
रोग पीडता देह को, नही जीव को नाम।
घर जले अग्नि थकी, नही घर का आकाश ॥ ३६ ॥
नही होवे जिस शास्त्र मे, धर्म प्रीति वैराग।
व्यर्थ परिश्रम क्यो करो, वृथा लवै ज्यो काग ॥ ३७ ॥
अग्नि तृप्ति नही काठ मे, उदधि नही के वारि।
काल तृप्ति नही जीव मे, सो धर्म करन मनधारि ॥ ३८ ॥
निशि दीपक शशि जानिए, रवि दिन दीपक जानि।
तीन भवन दीपक धरम, कुल दीपक सुत मानि ॥ ३९ ॥
शैल शैल माणिक नही, मोती गज गज नाहि।
वन वन मे चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहि ॥ ४० ॥
साधु चन्दन बावना, शीतल ज्यारो अग।
लहर उतारे भुयग की, देवे ज्ञान को रग ॥ ४१ ॥
साधु बडे परमार्थी, मोटो जिनको मन।
भर भर मुट्ठी देत है, धर्म रंगीला धन ॥ ४२ ॥

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाडिये, जब लग घट मे प्रान ॥ ४३ ॥

तुलसी दया न पारकी, दया आपकी होय।
तु नही मारे अवरको, तो तुझे न मारे कोय ॥ ४४ ॥

कचन तजनो सहज है, और त्रियन को नेह।
पर निन्दा पर ईर्षा, तुलसी दुर्लभ एह ॥ ४५ ॥

कितने दिन का जीवना, कितने धन की चाह।
ज्ञानी लेखा सोच ले, जीवन वृथा न जाय ॥ ४६ ॥

तन वल धन वल स्वजन वल, विद्यावल वल चार।
एक मनोवल के विना, चारो ही वेकार ॥ ४७ ॥

काम क्रोध मद नयन से, अन्धे चार प्रकार।
नयन अन्धा इनमे भला, करे न पर अपकार ॥ ४८ ॥

मरा कौन सव पूछते, सतरंज की सी चाल।
जो चूका सो मात है, समझ चलो मम लाल ॥ ४९ ॥

निज का स्वार्थ छोड के, सीखो पर उपकार।
इस भव मे शोभा लहै, आगे वेडा पार ॥ ५० ॥

भीतर देह घिनावनी, है रोगो का धाम।
जव तक परदा ठीक है, करले अच्छा काम ॥ ५१ ॥

कारज को करते चलो, तन मन वस मे राख।
होती निश्चय ही विजय, आफत आवे लाख ॥ ५२ ॥

कुटुम्ब मोह का जाल है, कोइ न देवे साथ।
भला वुरा जो कर गया, वनी रहेगी वात ॥ ५३ ॥

पहिले निज को शुद्ध कर, पीछे पर उपदेश।
दुनिया खुद झुक जायगी, होगा काम विशेष ॥ ५४ ॥

मधुर वचन से वोलिये, सुख उपजे चहुँ ओर।
वशीकरन यह मत्र है, तजिये वचन कठोर ॥ ५५ ॥

श्रवण नयन अरु नासिका, कर नही करत कयो।
तुलसी दारा सुतन पर, आश्चर्य कोन भयो ॥ ५६ ॥

श्रवण नैन अरु नासिका, सब ही के इक ठौर।
कहिबो सुनिबो बोलिबो, चतुरन को कछु और ॥ ५७ ॥

या धन की गति तीन है, दान भोग अरु नाश।
दान भोग में ना लगे, निश्चय होय विनाश ॥ ५८ ॥

मरहौगे मर जायँगे, कोई न लेगा नाम।
उजड जाय वसायगे, छोड वसता गाम ॥ ५९ ॥

माटी कहे कुमार से, तू क्यो रुधँ मोय।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रुधूगी तोय ॥ ६० ॥

धर्म, अध्यात्म और दर्शन

धर्म

एक वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, जैसे—अग्नि का जलाना धर्म है। पानी का शीतलता धर्म है। वायु का बहना धर्म है, आत्मा का चैतन्य धर्म है।

दूसरा, आचार या चारित्र को धर्म कहते हैं। इस दूसरे अर्थ को कोई इस प्रकार भी कहते है, "जिसे अभ्युदय और नि:श्रेयस् मुक्ति की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते है।"

चूकि आचार या चारित्र से इनकी प्राप्ति होती है, इसलिए चारित्र ही धर्म है। इस प्रकार धर्म शब्द से दो अर्थों का बोध होता है। एक वस्तु स्वभाव का, दूसरे चारित्र या आचार का।

इनमे से स्वभावरूप धर्म तो क्या जड और क्या चेतन सभी पदार्थों मे पाया जाता है, क्योंकि ससार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका कोई स्वभाव न हो, किन्तु आचाररूप धर्म केवल चेतन आत्मा मे ही पाया जाता है इसलिए धर्म का सम्बन्ध आत्मा से कहा जाता है।

मुख्य दर्शन और उनके प्रणेता

जैन—भगवान महावीर स्वामी। बौद्ध—महात्माबुद्ध, वेदान्त—व्यास मुनि, योग—पतजलि, न्याय—गौतम ऋषि, वैशेपिक—कणाद मुनि, मीमासा—जैमिनी, साख्य—कपिल मुनि, चार्वाक—वृहस्पति, केवलाद्वैत—शकराचार्य, आर्यसमाजी—स्वामी दयान्द, सिक्ख—गुरु नानक, ब्रह्म समाजी—राजा राममोहनराय, पारसीधर्म—महात्मा जरथुस्त, ईसाई धर्म—महात्मा ईसा (क्राइस्ट), इसलाम—हजरत मुहम्मद, यहूदी—महात्मा मूसा।

सनातन धर्म

इनमे वेदान्त का कर्ता व्याम मुनि, योग का पतजलि, न्याय का गौतम ऋषि, वैशेपिक का कणाद मुनि, मीमासा का जैमिनी, साख्य का कपिल मुनि, शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के कर्ता तथा केवलाद्वैत आदि के शकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि। निरजनी का हरिदास जी, दादू पथ का दादू जी, रामस्नेही का रामदास जी और राम चरण जी। चैतन्य सम्प्रदाय मे भी कई प्रकार के सम्प्रदाय हैं। रैदास, सेन, खाकी, मलूकदास, आचारी, पट्दर्शनी आदि अन्य भी कई प्रकार के मत इनमे हैं। दूसरे आर्य समाजी, राधास्वामी, कबीरपथी, और ब्रह्मसमाज आदि हैं। इनमे साख्य मत के सिवाय सब ईश्वर को कर्ता मानते है।

वेदान्त केवल ब्रह्म को मूलतत्व माननेवाला है। योग—२५ तत्त्व, यमादि इनके अनुष्ठान हैं। न्याय—(इसका नाम अक्षय वाद) इनमें प्रमाण-प्रमेय सिद्धान्त प्रभृति विचार-प्रणाली के सोलह अग व तत्वज्ञान मे सिद्धि होनी मानी गयी है। वैशेपिक—इसमे पदार्थों की विशेपता मानी गई है। मीमासा—(पूर्व और उत्तर) यज्ञादि कर्तव्य करना माना गया है और स्वर्ग भोग ही मनुष्य का कर्तव्य है। साख्य-प्रकृति और मनुष्य मूल तत्व, ईश्वर की असिद्धता आदि।

जैन धर्म और सम्प्रदाय

इस धर्म के प्रणेता प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ (ऋषभनाथ) और इनके पश्चात् अनुक्रम मे चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर (वर्द्धमान) हैं। विक्रम सम्वत् ५४२ पूर्व मिति चैत्र शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ। यह महात्मा बहत्तर वर्ष मे मोक्ष कार्तिक कृष्ण ३० को पधारे।

जैन धर्म के सिद्धात—सृष्टि अनादि है, जो जीव कर्मों को क्षय करने से परमात्म पद पर होते है वे ही ईश्वर है, जीव कर्मों का कर्ता और भोक्ता स्वय ही है, हिसा, झूठ, चोरी आदि दुष्कार्यों से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है और पाप कर्म से दुःख प्राप्त होता है। शुभकार्य करने से पुण्य होता है, इस तरह जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल प्राप्त होता है। नवीन कर्मों का रोकना सयम द्वारा और बधे हुए कर्मों का तोडना तप द्वारा, इस तरह समस्त कर्मों से अलग होना मोक्ष है।

इसमे मुख्य छ द्रव्य और नौ पदार्थ माने गये है। निक्षेप प्रमाण, सप्त-भगी आदि को मानने वाला जैन धर्म अनेकान्तवाद कहलाता है।

इसमे अरणगार (साधु) और आगार (गृहस्थ) दो तरह के धर्म कहे गये है। जो पाच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, आचार, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) पालन करते हैं वे साधु है और जो अरणुव्रत को धारण करते हैं, वे श्रावक हैं।

मोक्ष के चार मार्ग—ज्ञान, दर्शन, चारित्र (सयम) और तप कहे गये है।

जैन धर्म मे श्वेताम्वर और दिगम्वर दो मत हैं। श्वेताम्वर मुनि वस्त्र रखते है और दिगम्वर मुनि नग्न ही रहते है। आपस मे कई प्रकार के वोलो का मत है। दिगम्वरो मे जो पथ प्रचलित हुए उनके नाम द्राविड सघ, यापनीय सघ, काष्टासघ, माथुर सघ, भिल्लक सघ, भट्टारक, वीसपथ और तारणपथ आदि।

इनके मुख्य कर्ता—सामत भद्राचार्य वि० स० (¹), कुन्दकुन्दाचार्य स० १०१, उमास्वामी आचार्य वि० १४२, लोहाचार्य, नेमचन्द्राचार्य आदि हुए।

श्वेताम्वरो मे जो पथ प्रचलित हुए उनके नाम इस प्रकार से हैं

वी० ८८२ मे विशेप भाग चैत्यवासी वन गया। वी० ८८६ मे ब्रह्म दीपिका सम्प्रदाय हुआ, १४६४ वर्प मे वडगच्छ की स्थापना हुई। विक्रम ११३९ वर्प मे पट्कल्याणकवादी नाम का मत प्रचलित हुआ। विक्रम १२०४ मे खरतरगच्छ, १२१३ मे आचलिक गच्छ, १२३६ मे सावपौरणमिक गच्छ, १२५० मे आगमिकगच्छ, १२८५ मे तपगच्छ, १५६२ मे कटुक मत, १५७० मे वीजामत, १५७३ मे पार्श्वचन्द्रमत। यह प्रतिमा का पूजन मानते है। इनमे यति और सम्यगी है।

विक्रम १५०६ मे लुका श्रावक और १५३३ मे साधु सघ स्थापित हुआ तथा १५३५ मे स्थानक वासी (वावीस सम्प्रदाय) मत स्थापित हुआ। इनमे भी कई प्रकार के अलग अलग टोले हैं।

विक्रम १८१७ मे तेरह पथ सम्प्रदाय की स्थापना हुई। इनमे अलग अलग टोले नही है। वावोस टोले और तेरह पथी सम्प्रदाय वाले प्रतिमा की पूजन को नही मानते।

श्वेताम्वरो के ग्रथकर्ताओ के नाम श्यामाचार्य, मेरुतुगाचार्य, जम्भवाचार्य, भद्रवाहु स्वामी, कालिकाचार्य, शीलगाचार्य, जिनचन्द्रसूरि, हरिभद्रसूरि, सिद्धसूरि, अभयदेव, सूर्य, जिनवल्लभसूरि, हेमचन्द्राचार्य, सिद्धसेन दिवाकर आदि १६ वी शताब्दि तक और इसके पश्चात् सम्यगी, स्थानकवासी और तेरहपथी सम्प्रदाय के ग्रन्थ भी हुए।

पारसी धर्म

इसका कर्ता महात्मा जरस्तुथ (जरथुस्त) है। इसके अनुसार ईश्वर एक है, वह सर्वोपरि कर्ता और हर्ता है, मूर्ति पूजा व्यर्थ है, अग्नि मे सुगन्धित द्रव्यो की आहुति आदि क्रिया अनुष्ठान मानते है।

बौद्ध धर्म

इसके स्थापक थे महात्मा बुद्ध, जो गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस धर्म मे चार आर्य-सत्य प्रधान माने गये है - १ वस्तुमात्र क्षणिक और दु ख रूप है। २ ससार के क्षणिक पदार्थो की तृष्णा ही दु खो का मूल है। ३ सोपादान तृष्णा का नाश होना दु खो का अन्त है। ४ मानव हृदय मे अहभाव और राग-द्वेष की वृत्तियो के सर्वथा हट जाने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये आर्य अष्टाग मार्ग १ सत्यविश्वास, २ नम्र वचन, ३ उच्च लक्ष्य, ४ सदाचरण, ५ सद्वृत्ति, ६ सद्गुणो मे स्थिर होना, ७ बुद्धि का सदुपयोग और ८ सद् ध्यान, मानते है। कर्म-प्रधान और ध्यान से सिद्धि मानते है इत्यादि। यह क्षणिकवाद है और इसमे प्रधान दो शाखाये—हीनयान और महायान हैं। यह मूर्ति पूजा को मानते है।

इसलाम धर्म

इस धर्म के कर्ता हजरत मुहम्मद साहब थे जो चौबीसवे पैगम्बर कहे जाते है। इस धर्म के अनुसार खुदा (परमात्मा) एक है। इनमे पूर्ण विश्वास रखकर कुरान शरीफ जो इनका ग्रथ है, वही मान्य है। इनकी धारणा मे पुनर्जन्म नही होता। मूर्ति का विरोध, ईमान और सत्य आदि को धारण करने का उपदेश, जातिभेद निषेध इत्यादि इनकी खास मान्यताए है। इनमे सिया और सुन्नी दो मत है।

ईसाई धर्म

इसके सस्थापक महात्मा ईसा है। इनको परमात्मा का पुत्र मानते है। ईसा का उपदेश यह है कि अपने शत्रुओ से प्रेम करो, अपने से घृणा करनेवालो का उपकार करो, अपने को सतानेवाले के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना करो, आदि आदि। ईसामसीह ने क्षमा, विनय, दया और त्याग के प्रचार के लिए कहा। यह मूर्ति पूजा और पुनर्जन्म नही मानते है। बाइबल मे विश्वास रखते है, आदि। इनमे भी रोमन और कैथोलिक भेद से कुछ शाखाए है।

यहूदी

इस धर्म के कर्ता महात्मा मूसा हैं। यह भी मुसलमानो और ईसाइयो जैसे सिद्धान्तो को मानते है। वर्ण-व्यवस्था, मूर्तिपूजा और पुनर्जन्म नहीं मानते है।

मुसलमान, ईसाई, यहूदी ज्यादातर मनुष्य-हिंसा मे ही पाप मानते है। ये कहते हैं कि परले काल के समय परमात्मा सबको जैसा जैसा उचित होगा वैसे वैसे स्थान पर भेज देगा आदि।

चार्वाक

इसके कर्ता बृहस्पति आदि हुए है। इसमे प्रकृति को ही मूल माना गया है। यह स्वर्ग, नरक, पुण्य और पाप नही मानते। इस संसार मे नीति और कीर्ति को ही मानते हैं और सेवा-भाव मे भलाई मानते हुए अच्छे कार्य के उपदेश देते हैं। शरीर की नीरोगिता के लिए भरण-पोषण आदि को ठीक समझते हैं। तपस्या, वैराग्य को नही मानते।

धर्मों के विषय में टिप्पणियाँ

हिन्दुओ की त्रुटियां . १ हिन्दुस्तान मे ढाई तीन हजार वर्ष पहले जो संस्कृतियाँ इकट्ठी हुई थी उन्हे अपनाने पर भी यह जैन और बौद्ध धर्मो को पूरी तरह नही अपना सका। शैव-वैष्णवो को जिस प्रकार वह अपना अग बना सका, जैन एव बौद्धो को नही। मुसलमान, ईसाई, पारसी लोगो के साथ यह ठीक सम्बन्ध भी स्थापित नही कर सका। हिन्दू उनके धर्म स्थानो तक का उपयोग नही कर सकता, इस अनुदारता को दूर करना चाहिये। २ हिन्दू समाज मे जाति-पाँति के बन्धन इतने कठोर है कि अपने समाज मे रह कर इन बन्धनो को तोडना बहुत कठिन है। जो आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से महान् बन गये है उनकी बात तो दूसरी है, बाकी साधारण लोग इन बन्धनो को तोड कर अपना जीवन सुखी नही रख सकते। ऐसा नही होना चाहिए। ३ पुराने शास्त्र विचारकता मे बाधा डालते है। उनकी अध श्रद्धा काफी है, इसे दूर करना चाहिए। ४ रूढियो का जो जाल बिछा है, प्राचीनता का मोह छुडा कर इस जाल से अलग होना चाहिये। ५ अनेक प्रकार की अध श्रद्धा भरी रहती है, मत्र-तत्र, भूत-पिशाचो आदि पर अन्धविश्वास है, उसे हटाना चाहिये। ६ दार्शनिक विचारो पर धार्मिक आस्तिकता अवलम्बित है इसको दूर करना चाहिये। ७ स्त्रियो के अधिकार बहुत कम हैं ऐसा नहीं होना चाहिए।

मुसलमानो की त्रुटियां १ यद्यपि कुरान मे यह कहा गया है कि सभी कौमो और सभी मुल्को मे पैगम्बर हुए है पर, दूसरे के पैगम्बरो की इज्जत करने के लिये आज का मुसलमान समाज तैयार नही है। २ एकेश्वरवाद धार्मिक दलबन्दियो को दूर करने के लिये था, पर आज ईश्वर को नाना रूप, नाना अश मे मानकर पूजा जाता है उनमे मुसलमान तैयार नही है। इसलिये सब नाम-रूपो मे एक ईश्वर के दर्शन होना चाहिये। ३ वैज्ञानिक दृष्टि से

अगर कोई विचार करे और वह विचार कुरान के विरुद्ध जाये तो वह मानने को तैयार नही है। ४ अरव की मूर्तिपूजा नें वहाँ के आदमियो के दिलो मे जडता और वैर भाव भर दिया था। उसका विरोध उचित है, पर यहाँ जो मूर्ति अवलम्वता नही है उसको नही मानते। ५. कुरान की वहुत सी वातें उसी समय के लिये अनुकूल थीं, वदले हुए जमाने के लिए नही। पर आज का मुसलमान कुरान के विपय मे अन्ध श्रद्धालु है। वह नही सोच पाता और नही कह पाता कि जमाने के अनुसार शास्त्र वनने चाहिये। ६. मुसलमान जाति पाति न मानने पर भी यह गवारा नही कर सकता कि जिसके साथ शादी हो वह कोई दूसरे मजहव को पालता रहे या पालती रहे। ७. पर्दा तथा और भी अनेक सामाजिक रूढिया है, उसको जल्द दूर करनी चाहिए। ८ अरव की परिस्थिति के अनुसार जो पशुवध पर जोर दिया जाता है वह पशु की कुर्वानी को अनिवार्य वताना है। धार्मिक क्रियाओ से पशुवध विलकुल हटा देना चाहिये। ९ आज का मुसलमान काफी अन्ध श्रद्धालु है। वह फकीरो की या अन्य पौराणिक कथाओ की अन्ध श्रद्धापूर्ण वातो मे विश्वास करता है उसको विवेकी वनना चाहिये। १०. मुसलमानो मे जो वहुत स्त्रियो को रखने की प्रथा है और इन्हे अधिकार कम दिये हुए है उनमे सुधार होना चाहिये।

ईसाइयो की त्रुटियां १ इनके धर्म मे समभाव का अभाव है खास-कर भारत के देशी ईसाइयो मे; इन्हे समभावी वनना चाहिये। २ वाइविल मे आई हुई अन्ध श्रद्धापूर्ण कथाओ पर काफी अन्ध विश्वास है उसे हटाना चाहिए। ३ ईसाई गैर ईसाई के साथ वैवाहिक सम्वन्ध निभाने को तैयार नही हैं। इन्हे तैयार करना चाहिए। ४ जाति-पाति के विचार से काले-गोरे का भेद ठाना हुआ है, इसे दूर करना चाहिये। ५ देशी ईसाई भारतीय होकर भी विदेशी-सा वना हुआ है और विदेशी ईसाई मे राष्ट्रीय कट्टरता जरूरत से ज्यादा है वह नही होनी चाहिए।

पारसियो की त्रुटियां . १ इनमे धार्मिक सकुचितता और कट्टरता है। रूढियो का राज्य है। हिन्दुओ के अधिकाश दोप इनमे है।

जैनियो की त्रुटिया १ इनमे सर्वधर्म समभाव का अभाव-सा ही है। इनके मत से दूसरे धर्मो के महात्माओ व शास्त्रो मे भक्ति रखने से मिथ्यात्व आता है। दूसरो के धर्मस्थानो का उपयोग भी इसी से नही करते। २ सर्व-ज्ञता की मान्यता ऐसी गहरी है कि विकास की धारा ही रुकी हुई है। ऐसा वताना जरूरी है कि सर्वज्ञ कोई नही होता। ज्ञान की दृष्टि से मनुष्य विकसित

होता है, इसलिये जो कुछ शास्त्रो मे लिखा है न तो वह पूर्ण है और न अभ्रान्त है। ३ विज्ञान की तरफ झुक कर भी या विज्ञान सरीखी युक्ति की दुहाई देने पर भी मंत्र तंत्र तथा अतिशयो की अंध श्रद्धा भरी हुई है। ४ दर्शन शास्त्र तथा भूगोल, खगोल, पुराण आदि की पुरानी कल्पनाओ पर धर्म को या सम्यक्त्व मिथ्यात्व के विचार को ऐसा लटका रखा है जिससे महान अविवेक बन गया है। ५. मूल धर्म मे न होने पर भी पिछले धार्मिक साहित्य मे और शताब्दियो से आये हुए सामाजिक जीवन मे जाति पाति का विचार इतनी कट्टरता से जम बैठा है कि मूलधर्म को जानने वाला इस पर विचार भी नही कर सकता। ६ रूढियो का जाल बिछा है, सामाजिक परम्परा को नष्ट या गौण किये विना उसका तोडना कठिन है। ७ हिन्दुओ के समान नरनारी समभाव की यहा भी कमी है। बडे भाग मे उन्हे पुनर्विवाह का भी अधिकार नही है।

बौद्ध धर्म की त्रुटिया · १ बौद्ध यहा है नहीं, इसलिये इनकी सामाजिक बातो के बारे मे कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रहती, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि धर्म समभाव मे जैनियो सरीखी कट्टरता इनमे भी है। अन्ध विश्वास आदि भी है। रूढियो का राज्य भी है। इनमे अर्थ की इतना नहीं शब्दो की गुलामी है। दर्शनशास्त्र यहा भी धर्म की राह मे पडे है।

इसी तरह दूसरे धर्मो मे भी कोई न कोई त्रुटिया बनी हुई है। समभाव के बोल प्रत्येक धर्म मे इस प्रकार से रहने चाहिए धर्म जीवन की नैतिकता और दूसरे की भलाई के लिये है, उसे झगडे की जड न बनाना चाहिए। समभाव-विवाह संबंध मे विद्या, बुद्धि, स्वभाव, सदाचार, स्वास्थ्य, खानपान सौंदर्य, अर्थ, विचार आदि अनेक बातें देखी जायें, पर जाति का विचार न किया जाय। राष्ट्रीयता हम एक दूसरे की भाषा समझने की कोशिश करें। हरेक भाषा का सम्मान करें। शक्तिसम्पादन, समविभाग, स्वदेशी, समाज-सुधार, शिक्षण, नरनारी समभाव, अस्पृश्यता-निवारण सरलता, नैतिकता इत्यादि इत्यादि क्षेत्रो मे किसी तरह का पक्षपात मानव समाज को नही करना चाहिए। धर्म अपनी और दुनिया की भलाई का रास्ता ही बताता है।

अणुव्रत

(आचार्य श्री तुलसी)

अणुव्रत-आन्दोलन किसी का नही और सबका है, किसी एक सम्प्रदाय के लिए नही, सबके लिए है। इसका स्वरूप चारित्रिक है, इसलिए इसमे अधिकार और पद की व्यवस्था नही है। अधिकार की मर्यादा है आत्मानुशासन और आत्म-निरीक्षण, और पद है, 'अणुव्रती'—जो पद ग्रहण करने से ही प्राप्त होता है।

चरित्र का आंदोलन

यह आन्दोलन चरित्र का आन्दोलन है। आज विश्व को चरित्र की सबसे बडी आवश्यकता है। उसने सबसे अधिक किसी वस्तु को खोया है तो चरित्र को। विश्व की दु खद अवस्था का प्रधान कारण चरित्र-हीनता ही है। जीवन की आवश्यकताए पूरी नही होती तो जीवन जटिल बनता है। इसलिए अर्थ-नीति के सुधार की आवश्यकता महसूस होती है। वह कोई शाश्वत नही होती, बदल सकती है और बदलती भी है। कई राष्ट्रो मे वह बदल चुकी है। फिर भी वे अभय और अनातंकित नही है। जीवन-निर्वाह और विलास के साधन सुलभ होने पर भी वे शान्त नही है। इससे जान पडता है—शान्ति का मार्ग कुछ और है। वह यही है—चरित्र का विकास हो। बाहर की सब सुविधाए हैं, पर अन्दर सन्तोष नही, तो शाति कहा ? बाहर की सुविधाएं नही और अन्दर सन्तोष नही तो फिर अशाति का कहना ही क्या ! बाहरी सुविधाएं हों और अन्दर सन्तोष हो—ऐसी शाति की स्थिति मे भी कोई विशेष बात नही। किन्तु बाहरी असुविधाओ के होते हुए भी अगर आतरिक सतोष हो, तो भी शाति प्राप्त की जा सकती है—व्रतो के ग्रहण से। यही व्रत का मर्म है।

सर्व-साधारण भूमिका

जीवन की न्यूनतम मर्यादा सबके लिए समान रूप से ग्राह्य होती है। फिर चाहे वे आत्मवादी हों या अनात्मवादी, धर्म की कठोर साधना में रत लेनेवाले हों या न हों। अनात्मवादी पूर्ण अहिंसा में विश्वास भले ही न करें, किन्तु हिंसा अच्छी है—ऐसा तो वे नहीं कहते। राजनीति या कूटनीति को अनिवार्य माननेवाले भी यह नहीं चाहते कि उनकी पत्नियां उनसे छलनापूर्ण व्यवहार करें। असत्य और अप्रामाणिक भी दूसरों से सचाई और प्रामाणिकता की आशा रखा करते हैं। बुराई सचमुच मनुष्य की दुर्बलता है, स्थिति नहीं। सर्वसामान्य स्थिति भलाई है, जिसकी साधना 'व्रत' है। अणुव्रत-आन्दोलन उसी की भूमिका है।

अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत। व्रत छोटा या बड़ा नहीं होता, किन्तु उसका अखण्ड ग्रहण न हो, तब वह अणु या अपूर्ण होता है। 'अणुव्रत' जैन आचार का विशिष्ट शब्द है। पतंजलि भी देश-काल की सीमा से मर्यादित अहिंसा आदि को व्रत और देश-काल की मर्यादा से मुक्त अहिंसा आदि को महाव्रत बताते हैं।

व्रत-ग्रहण का उद्देश्य

व्रतों के पीछे आत्मशुद्धि की भावना है। ऐहिक लाभ या व्यवस्था के लिए व्रतों का ग्रहण नहीं होना चाहिए। उनके ग्रहण से ऐहिक लाभ स्वयं सधता है। व्रतों के ग्रहण का उद्देश्य तो आत्म-शोधन ही होना चाहिए। समाज की व्यवस्था ही अगर साध्य हो, तो वह राजकीय सत्ता से, व्रतों की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक हो सकती है। किन्तु व्रतों की भावना उससे बहुत आगे है। वह परमार्थ-मूलक है। उससे स्वार्थ और परमार्थ स्वयं फलित होते हैं।

लक्ष्य और साधन

१—अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है

(क) जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना।

(ख) अहिंसा और विश्वशान्ति की भावना का प्रसार करना।

२—इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन-स्वरूप मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का व्रती बनाना।

३—अणुव्रतो को ग्रहण करनेवाला "अणुव्रती" कहलायेगा।

४—जीवन-शुद्धि मे विश्वास रखनेवाले किसी भी धर्म, दल, जाति, वर्ण और राष्ट्र के स्त्री-पुरुष "अणुव्रती" हो सकेंगे।

५—अणुव्रती तीन श्रेणियो मे विभक्त होगे·

(क) अणुव्रतो, शील और चर्या तथा आत्म-उपासना के व्रतो को स्वीकार करनेवाला "अणुव्रती"।

(ख) इनके साथ-साथ विशेष व्रतो को स्वीकार करनेवाला "विशिष्ट अणुव्रती"।

(ग) ग्यारह व्रतो या वर्गीय नियमो को स्वीकार करनेवाला "प्रवेशक अणुव्रती" कहलायेगा।

६—व्रत-भग होने पर अणुव्रती को प्रायश्चित्त करना आवश्यक होगा।

७—व्रत-पालन की दिशा मे अणुव्रतियो का मार्ग-दर्शन प्रवर्तक करेंगे।

कर्मफल और दर्शन

भारतीय दर्शनो मे तीन दर्शनो का ऊचा स्थान है वैदिक दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन।

इनमे से जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन इस बात मे एकमत है कि कर्मों का फल प्रदाता कोई ईश्वरविशेष नही है। वैदिक दर्शन के छ विभाग है—साख्य, योग, मीमासा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक। इनमे से साख्य और मीमासाकार ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नही करते इसलिए वे भी कर्मों का स्वय कर्मों द्वारा ही फल प्राप्त है, इस बात के समर्थक है।

साख्य दर्शन का मत है कि लिग-शरीर बारम्बार स्थूल शरीर धारण करता है तथा पूर्वदेह को त्यागता रहता है। साख्य परिभाषा मे इसका नाम ससरण है। साख्य-कारिका ४२ मे लिखा है "नटवत् व्यक्त तिष्ठते लिगम्" जिस प्रकार अभिनेत्री कभी राम, कभी रावण, कभी स्त्री, कभी पुरुष, कभी राजा, कभी रक आदि रूप धारण करती है उसी प्रकार यह लिग (सूक्ष्म) शरीर धारण करता रहता है। कभी देवता बन जाता है, कभी नारी, कभी पशु-पक्षी, तो कभी मनुष्य आदि का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार लिग शरीर बगैर किसी ईश्वर आदि की प्रेरणा या सहायता के अनेक प्रकार के शरीर धारण करता है और सुख दुख भोगता रहता है। साख्य-दर्शन मे आत्मा तो निर्लेप है। न वह कर्ता है न भोक्ता है।

साख्य-दर्शन कर्मफल के लिए भी ईश्वर की आवश्यकता नही समझता। इसलिए साख्य-दर्शन अनीश्वरवादी प्रसिद्ध है। उसने ईश्वर का खण्डन जिन प्रबल युक्तियो से किया है, उसका दार्शनिक और ऐतिहासिक विवेचन विचारणीय है।

मीमासा—साख्य-दर्शन की तरह पूर्व मीमासा अनीश्वरवादी है। इसके मतानुसार कर्मफल देने के लिए ईश्वर आदि की कल्पना करने की जरूरत नही

है। "कर्म से अपूर्व (धर्माधर्म उत्पन्न करने की) शक्ति उत्पन्न होती है। उस अपूर्व रूप सूक्ष्म शक्ति से फल प्राप्त होता है।"

योग-दर्शन के अनुसार चित्त अनेक क्लेशो की खान है। सम्पूर्ण क्लेश विपर्ययरूप है। इन सम्पूर्ण क्लेशो का कारण अविद्या को ही माना जाता है। महतत्व अहकारादि परम्परा से परिणाम को स्थापित करते है और आपस मे एक दूसरे के अनुग्राहक बनकर कर्मों के फलो को जाति, आयु, भोग रूप मे निष्पन्न करते है।

योग दर्शनानुसार कर्मो मे क्लेश उत्पन्न होते है और क्लेशो से कर्मो का वध होता है। जैन-दर्शन मे इसी को द्रव्य-कर्म से भाव कर्म और भाव कर्म से द्रव्य कर्म का उत्पन्न होना कहा है। अत योग दर्शन भी कर्मफल देने के लिए ईश्वर की सत्ता स्वीकार नही करता। योग दर्शन का ईश्वर सम्पूर्ण वैदिक दर्शनो से निराला है जिसको हम मुक्तात्मा कह सकते है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार तो जीव, कर्म, सुख, दु ख व ससार की सत्ता ही नहीं है। यह सब भ्रम मात्र है। अत कर्म और उसके फल के विषय मे जो कुछ लिखा है वह सब निराधार सिद्ध हो जाता है। क्योकि ईश्वर के सिवाय उसके मत मे कोई वस्तु ही नही है। उसके मत मे तो ब्रह्म भ्रमवश माया मे फस गया है। यह माया क्या है, यही एक जटिल समस्या है। इसको सुलझाने मे सारे आचार्य असफल ही रहे है। अत. उसके विषय मे हम विचार करने की कोई आवश्यकता नही समझते।

न्याय-दर्शन मे २ सप्रदाय है: ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी।

अनीश्वरवादी के विषय मे कहने की तो कोई आवश्यकता ही नही है, जो ईश्वरवादी कर्मफल देने के लिए ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करते हैं उनके मत मे ईश्वर सम्पूर्ण कर्मों का फल नही देता। अपितु जिस कर्म का फल देना चाहता है, उसका देता है। हम देखते है कि मनुष्य कर्म करता है और उसके फल को नही भोगता। इससे जाना जाता है कि कर्मफल-दाता कोई अन्य शक्ति है, वह जिस कर्म का फल देना चाहती है उसी का देती है।

न्यायमतानुसार कर्मफल को ईश्वराधीन माना गया है। स्वामी दयानन्द जी ने "सत्यार्थप्रकाश" मे इसको तीसरे नास्तिक का नाम दिया है। क्योकि कर्मफल को ईश्वराधीन मानने मे अनेक आपत्तिया है। जो ईश्वर किन्ही कर्मों का फल देता है किन्ही का नही, वह किन्ही जीवो को बगैर कर्म किये ही फल देता होगा? इस प्रकार वह पक्षपाती और अन्याय दोष का भागी ठहरेगा।

दयानन्द जी ऐसे स्वच्छद ईश्वर को ईश्वर मानने के लिए तैयार नही हैं। इसलिए उन्होंने गौतम को नास्तिक की उपाधि से सुशोभित किया है। ईश्वर किसी कर्म का फल देता है, किसी का नही इसका कारण क्या है ? क्या वह जीवो की भलाई का इच्छुक है ? यदि ऐसा है तो सभी जीवो को सुखी बना देता या मुक्ति दे देता, जिसमे जीव भी सुखी हो जाते और ईश्वर भी झझटो से छूट जाता। यदि और कुछ कारण है तो वह कारण गुप्त होगा जिसका रहस्य सिवाय ईश्वर के और कोई नही जान सका। वैशेपिक दर्शन ईश्वर को मानता है या नही यह विद्वानो के लिए आज भी विवाद का विपय बना हुआ है। वैशेपिक दर्शन मे कर्मफल के लिए कोई विशेप विवेचन नही किया गया है और न ईश्वर को कर्मफलदाता माना है। अत जब तक स्पष्ट बात सामने न आये तब तक उसके विपय मे कहना व्यर्थ है।

स्याद्वाद इस प्रकार जब प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले धर्मो का समूह है तो उसे अनेक धर्मात्मक वस्तु का जानना उतना कठिन नही है जितना शब्दो के द्वारा उसे प्रकाशित करना कठिन है। क्योकि एक ज्ञान अनेक धर्मो को एक साथ जान सकता है किन्तु एक शब्द एक समय मे वस्तु के एक ही धर्म की आशिक व्याख्या कर सकता है। इस पर भी शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के आधीन है। वक्ता वस्तु के अनेक धर्मो मे से किसी एक धर्म की मुख्यता से वचन-व्यवहार करता है। जैसे देवदत्त को एक ही समय उसका पिता भी पुकारता है और उसका पुत्र भी पुकारता है। पिता उसे पुत्र कह कर पुकारता है, उसका पुत्र उसे पिता कह कर पुकारता है।

किन्तु देवदत्त न केवल पिता है और न केवल पुत्र ही है। किन्तु, पिता भी है और पुत्र भी है। इसलिये पिता की दृष्टि से देवदत्त का पुत्रत्व-धर्म मुख्य है और शेप धर्म गौण है। क्योकि अनेक धर्मात्मक वस्तु से जिस धर्म की विवक्षा होती है वह धर्म मुख्य कहाता है और इतर धर्म गौण।

स्याद्वाद के सिद्धात के अनुसार विवक्षित धर्म से इतर धर्मो का द्योतक या सूचक 'स्यात्' शब्द समस्त वाक्यो के साथ गुप्त रूप से सम्बद्ध रहता है। स्यात् शब्द का अभिप्राय कथंचित् या किसी अपेक्षा से है अत ससार मे जो कुछ है वह किसी अपेक्षा से नही भी है। इसी अपेक्षावाद का सूचक स्यात् शब्द है जिसका प्रयोग अनेकान्तवाद के लिये आवश्यक है, क्योकि स्यात् शब्द के बिना अनेकान्त का प्रकाशन सभव नही है। अत अनेकान्त दृष्टि से प्रत्येक वस्तु स्यात् असत् है। कोई कोई स्यात् शब्द का प्रयोग शायद के अर्थ मे करते है

किन्तु शायद शब्द अनिश्चितता का सूचक है जबकि स्यात् शब्द एक निश्चित अपेक्षावाद का सूचक। इस प्रकार अनेकान्त का फलितार्थ स्याद्वाद है क्योंकि स्याद्वाद के विना अनेकान्तवाद का प्रकाशन सम्भव नही है। अत एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए विभिन्न दृष्टिकोणो का समन्वय स्याद्वाद के द्वारा किया जाता है।

सूत्र और सिद्धान्त ये दोनो जुदा है। सिद्धातो का रक्षण करने के लिये उन्हे सूत्र रूपी सन्दूक मे रखा गया है। देश-काल का अनुसरण करके सूत्रो की रचना की गई है और वे उनमे गूथे गये है। वे सिद्धान्त किसी काल, क्षेत्र और भाषा मे क्यो न हो, नही वदलते अथवा खडित नही होते। सिद्धान्त का दृष्टान्त-राग द्वेष से वधा होता है और वधन का क्षय होने से भक्ति होती है।

धर्मो मे जो भिन्नता दिखाई देती है उसका कारण सदाचार या आत्म-शुद्धि का भेद उतना नही है जितना कि दर्शन, इतिहास, भूगोल आदि का भेद है।

जिस प्रकार जल को कोई नही वनाता उसी प्रकार धर्म को भी कोई नही वनाता। लोग कुए-बावडी वनाते है। उसी प्रकार सुधारक लोग सम्प्रदाय वनाते है तथा जिस तरह धन कमाने का एक ही साधन नही होता उसी तरह शान्ति प्राप्त करने के लिये एक ही सम्प्रदाय नही होता।

मनुष्य जाति एक है। कर्मो के भेद से उनके भेद हो गये हैं परन्तु उनको अछूत नही समझना चाहिए। अस्पृश्यता नाम का कोई पाप नही है।

प्रश्न-समाधान

धर्म का मूल क्या—दया, गुण का मूल—विजय, पाप का मूल—परिग्रह कलह का मूल—हंसी, रोग का मूल— खासी, वशीकरण का मूल—मीठे वचन, विचारना क्या—सवका भला, विष क्या—क्रोध और वैर, विना खून का दण्ड —निन्दा, विना परिग्रह का धन—विद्या, वैराग्य का फल—निराकुलता, सार वस्तु—परोपकार, पाप का वीज—प्राणी का वध, सुनने योग्य—सदुपदेश, सुख का मूल— सतोष, सचय के योग्य—पुण्य, लेने योग्य—भगवान का नाम, मारने योग्य—मन की चचलता, वोलने योग्य—सत्य, वधन का मूल—राग द्वेष, प्रकट करने योग्य—दूसरे के गुण और अपने अवगुण, नेत्र क्या—विवेक, दुख क्या—चिता और पराधीनता, त्यागना क्या—विषय कसाय, ज्ञान का फल क्या—वैराग्य, कमाना क्या—यश, अमूल्य क्या - समय पर काम आने वाली वस्तु,

अज्ञानी कौन—अपने स्वरूप को न जानने वाला, गरीब कौन—तृष्णावान, चचल—धन, यौवन, आयु, चतुर—आत्महित करने वाला, जागृत—अप्रमादी, ज्ञानी—तत्वो को जानने वाला, धनवान—सहायता देने वाला, मूर्ख—अपने हित अहित को नही समझने वाला, विना अग्नि के जलाने वाला—क्रोध, विना रोग गलाने वाला—चिंता, श्रेष्ठ— जितेन्द्रिय पुरुप, सोया हुआ—प्रमादी ।

कानजी स्वामी का प्रवचन

जीव ने पुण्य की वात सुनी है, धर्म की वात कभी नही सुनी । पुण्य-पाप कैसे होते है—यह बात जीव ने अनन्त वार सुनी है, किन्तु देहादि मे और पुण्य पाप से पृथक् मैं परावलवनरहित हू—ऐसे भिन्न आत्मा के शुद्ध स्वरूप की बात पहले कभी श्रवण नही की है । पुण्य करो, पुण्य करो । पुण्य से धीरे-धीरे धर्म होगा, यह वात त्रिकाल मिथ्या है । पुण्य विकार है । उसमे वधन है, धर्म नही है । धर्म तो पुण्य-पाप रहित आत्मा मे है । उसकी प्रथम श्रद्धा करने के लिए पुण्य सहायक नही है । पुण्य-पाप रहित स्वभाव धर्म है । ऐसा सुनकर तो अनेक कहते हैं कि अरे, पुण्य का भी अस्वीकार ! उन्हे पुण्य के विना आत्मा से ही धर्म होता है—इस वात की खवर नही है । कभी सुनी है, तो रुचि नही है । मैं 'पर' से भिन्न शुद्ध ज्ञायक हू, एक परमाणु मात्र मेरा नहीं है—ऐसा मानने वाला ज्ञानी जितनी तृष्णा दूर करेगा उतनी अज्ञानी दूर नही कर सकता । अज्ञानी ने वाह्य से सव कुछ मान लिया है, काय-क्लेश से आत्मधर्म नहीं होता । धर्म तो आत्मा का सहज स्वरूप है । उसमे स्थिरता धर्म की क्रिया है । भगवान आत्मा की श्रद्धा उसका ज्ञान और उसमे स्थिरता ही ज्ञान की अन्तर क्रिया है ।

लोगो ने वाह्य मे धर्म मान लिया है और उपदेशक भी वैसे मिल जाते हैं । अनेक प्रकार के विकल्प करते हैं । निरपेक्ष आत्म-तत्व के विना जीव मोह मे फसे हुये हैं और ससार का भार ढो रहे हैं । भले ही त्यागी नाम धारण कर ले, साधु हो या गृहस्थ हो, किन्तु जिनकी दृष्टि देह पर है वह देह की क्रिया को अपना मानकर, पुण्य पाप का भार ढोकर, अनत ससार मे परिभ्रमण करता है । मनुष्य माने या न माने लेकिन सत्य तो कहना ही पडेगा, सत्य तो छुपाया नही जा सकता ।

श्रद्धा मे तो पुण्य पाप दोनो ही है । वर्तमान मे शुद्ध भाव मे न रह सके तो शुभ मे युक्त होना चाहिए, किन्तु अशुभ मे तो नहीं जाना चाहिए । पुण्य-भाव छोडकर पाप-भाव करना तो किसी प्रकार ठीक नहीं है और तोड़ पुन

भाव को ही पुण्य मान ले तो उसे भी धर्म नही होता । मैं अक्रिय ज्ञानानद शुद्ध आत्मा हू । यह निश्चय या उसका मान करके उसमे अशत स्थिरता की वृद्धि करके राग को दूर करना सो व्यवहार मे शुद्ध ज्ञायक है । अशुभ से बचने के लिए शुभ भाव मे युक्त होना भी विकार है । वह मेरा सच्चा स्वरूप नही है । ऐसा समझना और अपने परिणाम सुधारने का प्रयत्न चालू रखना—वह आत्मार्थी जीवो का कर्तव्य है । प्रथम पुण्य पाप रहित आत्मा स्वभाव को श्रद्धा-ज्ञान मे निश्चित करके पश्चात् पुण्य पाप रूप विकार से हटकर अन्तर मे अरूपी ज्ञान-शान्ति मे स्थिर होना ही आत्मार्थी का कर्तव्य है । उसे माने और आचरण करें ।

तो मनुष्य भव किस काम का ? कोई कहे कि आत्मा की सूक्ष्म बात हमारी समझ मे नही आती । किन्तु भाई ! आत्मा की बात समझ मे नही आती– ऐसा तू कहे तो अनन्त काल मे यह महादुर्लभ मनुष्य-भव प्राप्त होने का अर्थ ही क्या ? आत्मा के मान बिना जगत् मे अनेक कुत्ते-कौए जन्म लेते है और मरते है उनकी कोई महिमा नही है । उसी प्रकार अनन्त-काल मे महान् दुर्लभ मनुष्य-भव प्राप्त करके सत्य समागम द्वारा अपूर्व आत्म स्वभाव को न जानने से उसका कोई मूल्य नही है और यदि पात्रता द्वारा आत्म स्वभाव को जाने तो उस ज्ञान की महिमा अपार है ।

जितना काल 'पर' के लिए लगाता है उतना यदि 'स्व' के लिए लगाये तो कल्याण हुए बिना न रहे । भाई ! अनन्त काल मे महान् दुर्लभ मनुष्य-भव प्राप्त हुआ उसमे कल्याण न किया तो फिर कब करेगा ?

धर्म-चिन्तन

(गुजराती भाषा में)

विशाल बुद्धि, मध्यस्थता, सरलता अने जितेन्द्रियपणु आत्मा मा होय ने तत्त्व पामवानु उत्तम पात्र छे।

बंध मोक्षनी यथार्थ व्यवस्था जे दर्शन ने विषे यथार्थ पणे कहे ते दर्शन निकट मुक्त पणानो कारण छे, ए यथार्थ व्यवस्था कहेवाने योग जो कोई विशेष पणो मानतो होय तो श्री तीर्थंकर देव।

अमारो अनुभव, ज्ञान, तेहन, फल वीतराग पणु छे, आत्म-स्वरूप थी महत्व कोई नही। आत्म स्वरूप जेनो प्रगट छे ते पुरुष आत्मकल्याण करे अने बीजा ने उपदेश द्वारा आत्मकल्याण करवा कहे।

१ रात्री थई, तेनो प्रभाव थयो, निद्रामा मुक्त थया, भाव निद्रा टालवानो प्रयत्न करजो।

२ व्यतीत रात्री अने गई जीदगी पर दृष्टि फेरवी।

३. सफल थयेला वखत ने माटे आनन्द मानो अने आज नो दिवस पण सफल करो, निष्फल थयेला दिवसने माटे पश्चाताप करी निष्फलता विस्मृत करो।

४ क्षण क्षण जता अनतकाल व्यतीत थयो छता सिद्धि थई नही।

५ सफल जन्म बनाव, ताराथी न बन्यो होय तो फरी फरी ने शरमा।

६ अघटित कृत्यो थया होय तो शरमाई ने मन वचन कायाना योग थी ते न करवानी प्रतिज्ञा ले।

७ जो तु स्वतन्त्र होय तो सवार समागमे तारा दिवसना नीचे प्रमाणे भाग पाड—१ प्रहर भक्ति कर्तव्य, १ प्रहर धर्म-कर्तव्य, १ प्रहर आहार-प्रयोजन,

१ प्रहर विद्या-प्रयोजन, २ प्रहर निद्रा अने २ प्रहर संसार प्रयोजन ।

८. जो तु त्यागी होय तो त्वचा वनितानु स्वरूप विचारीने ससार भणी दृष्टि करजे ।

९. जो तने धर्म अस्तित्व अनुकूल न आवतु होय तो नीचे कहूँ छु ते विचारी जजे । तु जे स्थिति भोगवे छे शा प्रमाण थी ? आवती कालनी वात शा माटे जाणी शकतो नथी ? तु जे इच्छे छे ते शामाटे मलतु नथी ? चित्र विचित्रतानु प्रयोजन शु छे ?

१०. जो तने अस्तित्व प्रमाण भूत लागतु होय अने तेना मूल तत्वनी आशका होय तो नीचे कहु छु ।

सर्व प्राणीमां समदृष्टि

चक्रवर्ती ने उपदेश करवा मां आवे तो ते घडीकमा राज्यनो त्याग करे, पण भिक्षुकने अनत तृष्णा होवा थी ते प्रकारनो उपदेश तेने असर करे नही ।

मोत मटाडी सके एवी औपधि कोई जोवामा आवी नथी । वैदे अने औपधि ए निमित्त रूप छे । वेदनीय कर्म ए निर्जरा रूपे छे । पण दवा इत्यादि तेमाथी भाग पडावी जाय ।

जे भगवान अर्हतनो स्वरूप द्रव्य, गुण अने पर्याय थी जाणे ते पोतानुं आत्मानु स्वरूप जाणे, अने तेनो निश्चय करीने मोह नाश पामे । आत्मा शुं, कर्म शु, तेनो करता कोण, तेनु उपादान कोण, निमित्त कोण, तेनी स्थिति केटली इत्यादि विचार ।

यथार्थ स्वरूप समज्या वगर अथवा पोते जे वोले छे ते परमार्थ यथार्थ छे के केम, ते जाण्या विना, जे वक्ता थाय छे ते अनंत संसार ने वधारे छे । द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग अने धर्म कथानुयोग महानिधि एवा प्रवचनो ने नमस्कार करू ।

कर्म रूपी वेरीनो पराजय कर्यो छे एवा अर्हत भगवान् शुद्ध चैतन्य पदमा सिद्धालय वीराजमान छे । एवा सिद्ध भगवान् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप अने वीर्य एवा मोक्ष ना पांच आचार जेना आचरणमा प्रवर्तमान छे अने वीजा भव्य जीवोने ते आचारमां प्रवर्तावे एवा आचार्य भगवान्, द्वादशागना अभ्यासी अने ते श्रुत, शब्द, अर्थ अने रहस्य थी अन्य भव्य जीवोने अध्ययन करावणार एवा उपाध्याय भगवान् ।

मोक्ष मार्ग ने आत्मा जागृती पूर्वक साधनारा एवा साधु भगवान् ने हुं परम भक्ति थी नमस्कार करू छू।

जीव लक्षण

चैतन्य छे, देह प्रमाण छे, असख्यात प्रदेश प्रमाण, ते असख्यात प्रदेशना लोक परिमित छे, परिणामी छे, अमूर्त छे, अनत अगुरुलघु परिणत द्रव्य छे, स्वाभाविक द्रव्य छे, कर्ता छे, भोक्ता छे, अनादि ससारी छे, भव्यतत्व लब्धि परिपाकादि थी मोक्ष साधनमा प्रवर्ते छे, मोक्ष थाय छे, मोक्षमा स्वपरिणामी छे।

ससारी जीव

ससार अवस्थामा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय अने योग उत्तरोत्तर बधना स्थानक छे।

सिद्धात्मा

सिद्धावस्थामा योग नो पण अभाव छे मात्र चैतन्य स्वरूप आत्मद्रव्य सिद्ध पद छे। विभाव परिणामभाव कर्म छे, पुद्गल सम्बध द्रव्य कर्म छे।

एकान्त द्रव्य, एकान्त क्षेत्र, एकात काल अने एकात भाव रूप सयम आराध्या विना चित्तनी शाति नही थाय एम लागे छे। एवो निश्चय रहे छे। काम, मान अने उतावल ए त्रणनो विशेष सयम करवो घटे छे। सोह (आश्चर्य-कारक) महापुरुषो रागद्वेषपणा करी छे। द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी अने भावथी जे सत्पुरुषो ने प्रतिबंध नथी ते सत्पुरुषो ने नमस्कार। सत्पुरुषो ने अगाध गभीर सयम थी नमस्कार।

ब्रह्मचर्य विषय

निरखीने नव यौवना, लेश न विषय निदान,
गणे काष्ठनी पुतली, ते भगवान समान।

आ सगला ससारनी रमणी नायक रूप,
ए त्यागी त्याग्यु बधु, केवल शोक स्वरूप॥

एक विषय ने जीतता, जीत्यो सौ ससार,
नृपति जीतता जीतिये दल पुर ने अधिकार॥

विषय रूप अंकुरथी, टले ज्ञान ने ध्यान,
लेश मदीरा पान थी, छाके ज्यम अज्ञान ॥

जे नव वाड विशुद्ध थी, धरे शियल सुखदाई,
भव तेनो लव पछी रहे, तत्व वचन ए भाई ॥

सुन्दर शीयल सुरतरू, मन वाणी ने देह,
जे नर नारी सेवशे, अनुपम फल ले तेह ॥

पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान,
पात्र थवा सेवो सदा ब्रह्मचर्य मति मान ॥

संयमी पुरुष

साधु—आत्म-साधना या मोक्ष के लिए साधना करनेवाले साधु कहलाते हैं।

संत—शान्तिभाव रखनेवाला या समता को धारनेवाला संत कहलाता है।

मुनि—सावद्य (पापसहित) कार्यों में मौन धारनेवाला मुनि होता है।

भिक्षु—आहार के दोषों को टालकर शुद्ध भिक्षा को लेनेवाला भिक्षुक कहलाता है।

यति—क्षमादि दस प्रकार के धर्म धारण करनेवाला तथा इन्द्रियों के विषय को जीतनेवाला यति होता है।

महन्त—जिसमें महान् गुण हों और जो 'मत हनो जीवों को' ऐसा उपदेश करता है वह महन्त कहलाता है।

योगी—योग को भली प्रकार साधनेवाला योगी होता है।

ऋषि—षट् कार्य के जीवों का प्रतिपालक याने संसार में तारनेवाला ऋषि कहा जाता है।

सम्यगी—वैराग्य-भाव को धारनेवाला तथा किसी से स्नेहपाश नहीं रखनेवाले को सम्यगी कहते हैं।

निर्ग्रंथ—जो द्रव्य और भाव तथा बाह्य और आभ्यन्तर ग्रंथ से निवृत्त होता है उसे निर्ग्रंथ कहा जाता है।

श्रमण—शुद्ध क्रिया में श्रम (परिश्रम) करनेवाला श्रमण कहलाता है।

चैत्य—चित्त-प्रसन्नकारी दर्शन से चैत्य कहलाता है।

ब्रह्मचारी—नवविध ब्रह्म-क्रिया पालनेवाला ब्रह्मचारी है।

धर्मदेव—धर्म का उपदेशक, तीन लोक का पूजनीय धर्मदेव होता है।

तपस्वी—(तापस) वारह प्रकार के तप करनेवाले तपस्वी को तापस कहते है।

सन्यासी—जिसका पृथ्वी पर ही शयन हो और जो क्रियावन्त हो वह सन्यासी कहलाता है।

कल्याणिक—कल्याण करनेवाला।

मंगलीक—विघ्नो को उपशांत करने वाला होता है।

फकीर—फिकर का फाका करनेवाला।

औलिया, खाखी, वैरागी इत्यादि भी कई प्रकार के नाम है।

उपदेश

१ पहिले ज्ञान प्राप्त करो, फिर बन्धन को समझ कर तोड़ो अर्थात् सब कुछ जानो और दु ख के हेतुओ को छोडो ।

२. समस्त जीवो को अपना-अपना जीवन प्रिय है, सुख प्रिय है, वे दु ख नही चाहते, सब जीने की इच्छा करते हैं। सब जीव जीना चाहते हैं, कोई भी मरना नही चाहता । अतएव निर्ग्रंथ मुनि घोर प्राणीवध का परित्याग करते हैं।

३. जैसे मैले दर्पण मे मुख दिखलाई नही देता, उसी प्रकार रागभाव से रगे हुए हृदय मे वीतरागदेव के शान्त-भाव का दर्शन नही होता ।

४ लोकेषणा का अनुसरण करना, लोगो की देखा-देखी चलना नही चाहिए ।

५. जिनकी इन्द्रिया विषयो मे आसक्त हैं उनको स्वाभाविक दु ख समझना चाहिए क्योकि यदि उन्हे दु ख स्वाभाविक नही है तो वे विषयो की प्राप्ति के लिये यत्न ही क्यो करते ?

६ हे मनुष्य ! तू चाहे जहां जा और चाहे जो क्रिया कर परन्तु जब तक तेरा चित्त शुद्ध न होगा तब तक किसी तरह भी तुझे मोक्ष नही मिल सकता ।

७ वास्तव मे जीवो का वध अपना ही वध है और जीवो पर दया करने पर ही दया है । इसलिए विषकण्टक के समान हिंसा को दूर से ही त्याग देना चाहिये ।

८ इन्द्रियो का असयम आपदाओ का—दुःखो का मार्ग है और उन्हें अपने वश मे करना सम्पदाओ का—सुखो का मार्ग है। इनमे से जो रुचे उस पर चलो ।

९. यदि शास्त्रो को पढकर हेय और उपादेय का ज्ञान नही हुआ, किसमे आत्मा का हित है और किसमे आत्मा का अहित है यह समझ पैदा नही हुई तो श्रुताभ्यास मे परिश्रम करना व्यर्थ ही हुआ है।

१० मनुष्य पुण्य का फल 'सुख' तो चाहते हैं, किन्तु पुण्य कर्म करना नही चाहते और पाप का फल दुःख कभी नही चाहते, किन्तु पाप को बडे यत्न से करते है।

११. जो गृहस्थ होकर भी निर्मोही है वह मोक्ष के मार्ग मे स्थित है परन्तु जो मुनि होकर भी मोही है वह मोक्ष के मार्ग मे स्थित नही है। अतः मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है।

१२. जो दूसरो के दोषो की तरह अपने भी दोषो को देखता हैं उसके समान कौन है ? वह शरीर से युक्त होते हुए भी वास्तव मे मुक्त है।

१३. अंध-परम्परा से चलनेवाले, मायावी, लालची, प्रमादी, साहसहीन और विषयासक्त पुरुष सम्यक्त्व, श्रावकत्व, मुनित्व आदि सिद्धियाँ नही प्राप्त कर सकते।

१४ चाहे जिस सम्प्रदाय मे हो, मत मे हो, पथ मे हो और काल मे हो, परन्तु मन को जीतकर आत्मा को पहिचानने का परिश्रम करनेवाला धार्मिक ही है।

१५ अग्नि से जले हुए बीज मे से अंकुर नही फूटता, इसी प्रकार सिद्धो को सकल कल्पना का विलय रूप कर्म के जल जाने पर पुनर्जन्म नही होता, अर्थात् एक बार आत्मा का अखण्ड ज्ञानोदय होने पर पुन. कल्पना रूप संसार की उपस्थिति का उद्‌भव नही होता।

१६. अविवेकी के लिए शास्त्र भाररूप, रागवान के लिए ज्ञान भाररूप और अशान्त का मन भाररूप है तथा आत्मज्ञान ही अभय का दाता है।

१७ आत्मा स्वत सिद्ध है, निर्वाणपद को साधनेवाले ही साधु हैं। आत्म-स्वरूप की स्थिति के अतिरिक्त जिसमे अन्य किसी प्रकार की ग्रंथी या भेदत्व न हो, वही निर्ग्रंथी है, जिसने आत्मा को जितने अंग मे अनुभव किया वह उतने ही अंग मे स्थित है।

१८ अकिंचन हू इसलिये मैं महान् हू, कामनाएं सीमित हैं इसलिये मैं सुखी हूँ, कथनी और करनी मे भेद नही जानता इसलिए मैं ज्ञानी हू, बाहरी वस्तुएं मुझे खीच नही सकती इसलिए मैं सरस हूँ, अपनी कमजोरियो को देखता हूँ इसलिये पवित्र हूँ, सबको आत्मतुल्य मानता हूं इसलिए मैं अभय हूँ।

१९ आत्मा में शक्ति रूपी आनन्द भरा है, किन्तु उस शक्ति के मूल में 'रागादि' अज्ञान है। इस कारण उसे अपने आनन्द का अनुभव नहीं है, किन्तु आकुलता का अनुभव है इसलिये जन्म-मरण धारण करते हैं, अपने स्वरूप के सम्मुख होकर उसमें एकाग्रता रूपी अग्नि द्वारा सेकने पर (चैतन्य का तापन होने पर) स्वभाव के आनन्द का स्वाद आता है।

२०. शुद्ध भाव को ही श्रेय रूप जानकर, उसका आचरण कर धर्मी का पुण्य भाव होता है किन्तु पुण्य को जो धर्म माने वह धर्मी नहीं होता, धर्म आत्मा का अवलम्बन है, राग का अवलम्बन नहीं है, इसलिए हे जीव! धर्म का कारण अंतर में खोज।

२१ क्रोध से प्रीति का नाश, मान से विनय का नाश, माया से मित्रता का नाश, लोभ से सर्वगुणों का नाश होता है इसलिए क्रोध को शान्त भाव से, मान को कोमल भाव से, माया को सरल भाव से, लोभ को सन्तोष भाव से जीतने की चेष्टा की जाय।

२२ जिस प्रकार नगर की शोभा द्वारों में है, मुख की शोभा नेत्रों में है, और वृक्ष की स्थिरता मूल से है, उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य की शोभा सम्यक् दर्शन से है।

शास्त्र-संशोधन

शास्त्रो मे जो जो बातें स्पष्ट करनी जरूरी हैं वे इस प्रकार हैं :—

१. जिस-जिस जगह माम व मच्छ आदि शब्द आये हुए है उनकी जगह जो-जो अर्थ इस समय किया जाता है वैसा ही खुलासा करके लिखा जाना चाहिए।

२. अल्प शब्द जिस जगह 'थोडे' अर्थ का है और जिस जगह नही का है वैसा ही खुलासा लिखना जरूरी है।

३. जो शब्द करेज्जा वदेज्जा आदि क्रिया के सग जोडने का अभिप्राय है दूसरी जगह से निकालकर उसी के पीछे लगा दिया जाय जिस जगह जरूरी है।

४. जो-जो पाठ जिनकल्पी के हैं और जो-जो स्थविरकल्पी के हैं उसका भी खुलासा कर दिया जाय।

५ जिन-जिन शास्त्रो के पाठो मे और अर्थों मे अंतर है उसका खुलासा कर लिया जाय या तो पाठ या अर्थ उसी से मिलते रखे जायें।

६. शास्त्रो मे जो-जो बातें अप्रासगिक हो वे निकाल दी जायें जैसे—भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि।

हेय और उपादेय

धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से त्याज्य (हेय) और ग्राह्य (उपादेय) का स्पष्टीकरण

हेय :—

कुसगति, व्यभिचार, द्यूत, अभक्ष भोजन, मादक द्रव्य, रेशमी वस्त्र, विदेशी वस्त्र, लाक्षा, तास, चौपड, शतरज आदि खेल, बुरे नाटक, विलासिता, निर्दयता, दर्प, चटोरपन, गंदा-साहित्य, चाटुकारिता, ब्रह्मचर्य-भंग, मैथुन, भय,

असूया, परदोपदर्शन, छिद्रान्वेपरण, विपाद, धूर्तता, परनिन्दा, असत्य भापरण, कटुवचन, चुगली, वाचालता, कृपरणता, अपव्यय, आलस्य, सहनाकाय, अहमान करना, अशुश्रूपा, लोभ, क्रोध, द्वेष, प्रमाद, क्रूरता, वक्रता, कृतघ्नता, चपलता, ईर्ष्या, सशय, हठ, चोरी, अपवित्रता, निर्लज्जता, शत्रुता, दम्भ, विश्वासघात, वडाई, मिथ्या आश्वासन, शपथ खाना या दिलवाना, नास्तिकता, सकीर्णता, अभिमान, तृप्णा, मोह, वासना, फल-कामना, विपय-चिन्तन, सकल्प-विकल्प, आसक्ति, ममता, कर्तृत्वाभिमान, शाप और वरदान देना, अशुभ कर्म का गोपन, शुभ कर्म का प्रकाश, सूर्योदय के वाद सोना, चिन्ता, शोक, भूतोपासना, पराई आजीविका का विनाश।

उपादेय —गुरुवदन, ध्यान, आत्म-चिंतन, स्वाध्याय, समताभाव, पवित्रता, सत्सग, समदर्शिता, विवेक, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, तप, दान, सरलता, नम्रता, क्षमा, मैत्री, सहृदयता, प्रेम, मनोनिग्रह, इन्द्रियदमन, निर्भयता, निष्कपटता, निर्लोभ, मितव्यय, लज्जा, उत्साह, अनसूया, प्रसन्नता, अतिथि सेवा, भक्ति, श्रद्धा, समाधान, सतोप, तितिक्षा, कुतर्काभाव, प्राणायाम, निप्काम भाव, शुद्ध आहार।

संक्षिप्त जैन इतिहास

भगवान महावीर स्वामी का जन्म विक्रम सम्वत् से ५४२ वर्ष पूर्व मि. चैत्र शुक्ला १३ को हुआ और वर्द्धमान नाम रक्खा गया। यशोदा नाम की स्त्री के साथ विवाह हुआ और उसके प्रियदर्शना नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। यह लडकी जमाली के साथ व्याही गई। आपका निर्वाण विक्रम से ४७० वर्ष पहले कार्तिक कृष्णा ३० को ७२ वर्ष की अवस्था मे पावापुरी मे हुआ।

भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म विक्रम से ७९३ वर्ष पूर्व काशीनगरी मे हुआ। इन्होंने ३० वर्ष की अवस्था मे दीक्षा अगीकार की। ७० वर्ष तक धर्म का प्रचार कर १०० वर्ष की आयु पूर्ण कर मोक्ष पधारे।

भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण ईसा के ५२७ वर्ष पूर्व हुआ। गौतम स्वामी ५२७, सुधर्मा स्वामी ५१५, प्रभव स्वामी व जम्बू स्वामी ४६२, ४५२। भगवान श्री महावीर स्वामी के इन्द्रभूति आदि ११ गणधर हुए।

श्री सुधर्मा स्वामी (केवली) १
श्री जम्बू स्वामी (केवली) २
श्री प्रभव स्वामी (श्रुतकेवली) १
श्री जम्भव स्वामी (श्रुतकेवली) २
श्री यशोभद्र स्वामी (श्रुतकेवली) ३
श्री भद्रवाहु स्वामी (पचम श्रुतकेवली) ५
श्री सभूति विजय स्वामी (श्रुतकेवली) ४

भगवान महावीर स्वामी और इनके ग्यारह गणधर श्री गौतम स्वामी आदि।

श्री सुधर्मा स्वामी पाट पहला केवली
श्री जम्बू स्वामी पाट दूसरा केवली

श्री विष्णु स्वामी पहला श्रुत केवली

श्री नन्दी स्वामी दूसरा श्रुत केवली

श्री अपराजित स्वामी तीसरा श्रुत केवली

श्री गोवर्धन स्वामी चौथा श्रुत केवली

श्री भद्रवाहु स्वामी पाचवा श्रुत केवली

श्वेताम्वरो और दिगम्वरो के विषय मे यह दंतकथा है कि वीरात ६०९ मे यह दो सम्प्रदाय अलग-अलग नाम से हुए।

कई इतिहासकारो का कहना है कि जम्वू स्वामी के पीछे अर्थात् भगवान के निर्वाण के वाद ६४ वें वर्ष मे अनेक मुनियो मे दो दल हो गये थे।

दिगम्वरो मे भी छोटे वडे पथ प्रचलित हो गये। इनमें ये मुख्य हैं·

द्राविड सघ, यापनीय संघ, काष्ठा सघ, माथुर सघ, भिल्लक सघ, भट्टारक, वीसपथ, तारण पथ, इत्यादि।

इनमे मुख्य ग्रथ-कर्ताओ के नाम —

सामतभद्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, भूधरदास जी, वनारमीदाम जी आदि।

भगवान महावीर स्वामी की उपदेश देने की शैली उत्कृष्ट ढग की थी। वह शैली हम लोगो के लिए आदर्शरूप है। उनकी उपदेश-पद्धति शान्त, रुचिकर और सरल थी और हरेक के लिए सम्मान-भाव की थी। इनका उपदेश था —

१ श्रेष्ठता का आधार जन्म नही परन्तु गुण है। गुण मे ही पवित्र जीवन की महत्ता स्थापित है।

२ जातिपाति का भेद रखे विना हरेक मनुष्य के लिए भिक्षुपद तथा गुरुपद का रास्ता खुला रहे।

३ पुरुषो की तरह स्त्रियो के विकास के लिए भी पूरी स्वतन्त्रता की योजना हो। इनके लिए विद्या-आचार तथा गुरुपद का (आध्यात्मिक) मार्ग खोल दिया जाय।

४ लोक-भाषा मे तत्व-ज्ञान और आचार का उपदेश करने के लिए सरल भाषा का प्रयोग हो।

५ ऐहिक और परलोक-कल्याण के लिए यज्ञ आदि कर्मकाण्डो की अपेक्षा सयम तथा तप-पुरुषार्थ-प्रधान मार्ग स्थापित हो।

६ त्याग के नाम पर होने वाले अनाचार की जगह सच्चे त्याग-भोग की स्थापना की जाय। उपरोक्त वाते तो उनके साधारण उपदेश मे थीं ही, तत्व-

ज्ञान मे अनेकान्त और सप्तभंगी आदि स्याद्वाद् नामक प्रसिद्ध 'फिलासफी' के भी वे जन्मदाता थे।

भगवान महावीर के अनुयायियो मे और शिष्यो में सभी जातियो के लोगो का उल्लेख मिलता है :

१. इन्द्रभूति आदि उनके ग्यारह् गणधर ब्राह्मण थे।

२. उदाई मेघकुमार आदि क्षत्रिय भी शिष्य थे।

३ शालिभद्र इत्यादि वैश्य जाति के थे।

४. मतोरज तथा हरकेशी अति शूद्र भी भगवान की दी हुई पवित्र दीक्षा का पालन कर ऊँचे पद को प्राप्त हुए। साध्वियो मे चन्दनबाला क्षत्रिय-पुत्री और देवानन्दा ब्राह्मणी थी।

गृहस्थ अनुयायियो मे वैशालीपति चेटक, मगध नरेश श्रेणिक और इनका पुत्र कोणिक आदि अनेक भूपति क्षत्रिय थे। आनन्द, कामदेव आदि ९ वैश्य और सकडाल कुम्हार यह १० उपासको मे थे। एक कुम्हार भी दृढ उपासक था। खधक आदि अनेक परिव्राजक और सीमिल आदि अनेक ब्राह्मणो ने भगवान का अनुसरण किया था। गृहस्थ उपासिकाओ मे रेवती, सुलसा और जयन्ति के नाम प्रख्यात हैं। इति।

भगवान महावीर के पूर्व ही जैन धर्म चला आ रहा था। वह उस समय निगट के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय प्रधान निगट्ठ (निग्रथ) केशीकुमार आदि थे और अपने को पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा के अनुयायी बतलाते थे एव चातुर्यामी धर्म पालन करते थे और कपडे आदि के कल्प भी उनके नही थे।

वैराग्य-चिन्तन

अशरणानुप्रेक्षा

इस ससार रूपी गहन वन मे भ्रमण करते हुए मोहाध जीव के लिए बाह पकडकर अवलम्ब देनेवाला कोई भी ससार मे दृष्टिगोचर नही होता। व्याघ्र जब मृग को घेर लेता है तब उसकी रक्षा कोई भी नही कर सकता। उसी प्रकार जब जीव को मृत्यु रूपी यमराज पकडता है तब उसकी रक्षा सुर-असुर आदि कोई भी नही कर सकते। जब इस जीव को असाध्य रोग घेर लेता है और काल भक्षण करने के लिए मुह फाडता है तब अनेक प्रकार की विभूति, बल, ऐश्वर्य कुछ भी काम नही आता। बडे-बडे डाक्टर-हकीम-वैद्य मुह ताकते ही रह जाते है। अपने सदा के प्रेम करने वाले माता-पिता रोते ही रह जाते है। भाई-बहन हाथ पर हाथ दिये बैठे रहते है। पति-परायणा स्त्री छाती पीटती रह जाती है, परन्तु काल के गाल से रक्षा कोई नही कर पाते।

ससारानुप्रेक्षा

ससार की चार गतियो की अनेक योनियो मे जीव का भ्रमण निज कर्म बधानुसार हुआ करता है और उसमे तनिक भी आनन्द नही है। देव, मनुष्य, पशु, आदि सभी मानसिक एव शारीरिक व्यवस्थाओ मे दुखी रहते है अत इस दुःखमय ससार मे प्रीति करनी योग्य नही है। यह जीव पच परावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव) रूप ससार मे अनेक प्रकार की योनियो मे भ्रमण करता है। कर्म की प्रेरणा से कभी स्वर्ग मे जाकर अपने को कृतकृत्य मानता है, कभी नरक मे जाकर अनेक यत्रणाएँ सहता है और कभी निगोद की योनि मे जाकर महादु खोदधि मे निमग्न होता है। प्राय ऐसा होता है कि जो पुत्र पूर्व जन्म मे पिता था वही इस जन्म में पुत्र होता है, सेवक स्वामी होता है, स्त्री

माता होती है और माता स्त्री होती है। फिर, ऐसे ससार मे विश्वास करना वृथा है।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

यह बोध अर्थात् रत्नत्रय का इस संसार-सागर मे पाना अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसे पाकर जो गवाते हैं वे मानो अपने हाथ मे आये हुए अनमोल रत्न को समुद्र मे फेंक देते है। इस दुःख रूप असार ससार मे निगोद राशि से निकलकर त्रस जन्म का पाना दुर्लभ है। यदि त्रस-योनि मे जन्म भी हुआ तो फिर पचेन्द्रिय होना दुर्लभ है। मनुष्य पर्याय मे भी उत्तम कुल, उत्तम देश, इन्द्रियो की पूर्णता, आरोग्यता आदि का सयोग महादुर्लभ है। यदि यह भी प्राप्त हुआ तो परम अहिंसात्मक धर्म, धर्म मे उत्तम श्रद्धा, गृहस्थ धर्म, यति धर्म तथा समाधि-मरण आदि का पाना नितान्त दुर्लभ है। इस प्रकार ध्यान कर रत्नत्रय का चिन्तवन करना ही बोधिदुर्लभ भावना है।

वार्ता

एक समय बादशाह मुर्तगाली अपनी सभा मे बैठा था उसी समय एक हकीम ने आकर वहा पर कहा कि 'हजरत, मैं तमाम बीमारियो की दवा जानता हू।' तब बादशाह ने कहा कि 'तुम सब बीमारी की दवा जानते हो तो हमारी खुदा के गुनाह के आजार है सो अगर तुम इस बीमारी की दवा जानते हो तो कहो। तब हकीम ने कहा, 'अलबत्ता मैं यह भी जानता हू।' जब बादशाह ने कहा बताइये, तो हकीम ने दवा बतायी। दवा यह थी कि अव्वल तो फकीरी की जड दूसरे आदर-सत्कार का पता। तीसरा, अलग जा बैठने का बहेडा। चौथा आप मेहरबानी रखने की हरडे। इन चारो औषधियो को अपने हृदय की ओखली मे फिकर के दस्ते से कूटकर और दिल की साफी से छानकर और मीठा बोलने का दूना शहद मिलावे फिर इसकी गोलिया बनाकर साझ सवेरे दोनो वक्त साधन करे तो बादशाह तुम्हारे खुदा के गुनाह का आजार दूर हो और इसमे झूठ न बोलने का परहेज रक्खे। इस आजार की यह दवाई है।

साहित्य, विज्ञान और अन्य विषय

डायरी के पृष्ठों से

पुराना होने के कारण क्या दोष भी पूज्य हो जाता है ? क्या हम स्वतन्त्र बुद्धि के बल से सिर उठा कर यह नही कह सकते हैं कि पहले क्या था और अब क्या है ? यह हम नही जानना चाहते—समाज मे जितने दोष हैं उन्हे दूर करेंगे और मगल को आह्वान कर बुला लावेंगे ? हम अपने शुभाशुभ ज्ञान के हाथ पैर तोड कर उसे लूला लगडा बना देते हैं और बडी आवश्यकता होने पर देश के बृहत् अनिष्ट और वृद्ध अमगल दूर करने के समय समस्त पुराण, संहिता वेदान्तादि ग्रन्थो से वचन खण्डादि ढूंढने के लिए हैरान होते हैं। समाज के हिता-हित के विषय मे ऐसा लडक-खेल क्या और भी किसी देश के वय प्राप्त लोगो मे पाया जाता है ?

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मनुष्य दूसरा चाहे कोई ही काम क्यो न करे, चाहे वह शासन-विभाग मे काम करे, चाहे देश की रक्षा का काम करे, चाहे उपदेशक, शिक्षक, आवि-ष्कारक, कवि या कलाविज्ञ का काम करे किन्तु किसी भी बुद्धिमान् आदमी का सबसे पहला और जरूरी कर्तव्य यही है कि वह अपने तथा दूसरे लोगो की जीवन-रक्षा के लिये प्रवृत्ति के साथ जो अनवरत युद्ध चल रहा है उसमे भाग ले।

—महात्मा टाल्स्टाय

मुझे यही मानना ज्यादा वाजवी और सगत लगता है कि मनुष्य जीवन और सामाजिक जीवन के साथ बराबर और पूरा पूरा मेल खाने वाला धर्म का स्वरूप प्रवृत्तिप्रधान ही है निवृत्तिप्रधान नही। इसी तरह मुझे यह भी प्रतीत होता है कि किसी भी समय मे जैन-धर्म के मूल उद्गम मे निवृत्तिप्रधान स्वरूप

को स्थान नही मिला था बल्कि उसमे प्रवृत्तिप्रधान स्वरूप को ही स्थान था, मेरे इस मन्तव्य की पुष्टि वर्तमान जैन-परम्परा के आदि प्रवर्तक-तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन-वृत्तात से भी असदिग्धता पूर्वक होती है।

—पडित सुखलाल जी

दुनिया मे जितने लोग दु खी हुए हैं वे अपने सुख के पीछे पडे इसीलिये दु खी हुए। जो कोई दुनिया मे सुखी पाये जाते है वे सब औरो को सुखी करने की कोशिश के कारण ही सुखी हुए हैं। काश, केवल हमारे धर्मोपदेशक ही नही किन्तु दुनिया के राजनैतिक नेतागरण भी इस सिद्धान्त को समझ लेते।

—काका कालेलकर

मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिये है। यह आत्मा का गुण है, क्योकि आत्मा तो सभी के होती है। अहिंसा सब के लिये है, सब जगहो के लिये है, सब समय के लिये है। अगर वह दरअसल आत्मा का गुण है तो हमारे लिये वह सहज हो जाना चाहिए। आज कहा जाता है कि सत्य 'व्यापार' मे नही चलता, राज-कारण मे नही चलता। तो फिर वह कहा चलता है ? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रो मे और सभी व्यवहारो मे नही चल सकता तो वह कौडी कीमत की चीज नही है। जीवन मे उसका उपयोग ही क्या रहा ? मैं तो जीवन के हर एक व्यवहार मे उसके उपयोग का नित्य नया दर्शन पाता हू।

— महात्मा गाधी

प्रभु ! तेरे पथ पर चलते हुए अगर मैं बिल्कुल गरीब हो जाऊं, लोग मेरा मजाक उडायें, लापरवाही दिखायें, निन्दा करें तो भी तुझ पर मेरी श्रद्धा अटूट रहे, मैं तेरी राह का राहगीर बना रहूँ और जीवन के अत मे तेरा ध्यान रखता हुआ तेरा नाम लेता हुआ, संतोष से विदा ले सकू।

अगर मेरे पास वैभव हो, अधिकार हो, यश हो तो उसमे अन्धा न हो जाऊं, इनका दुरुपयोग करके दुनिया का दु ख न बढाऊ, तेरे नाम पर इन सब को न्यौछावर करने की शक्ति रख सकू। प्रभु, मेरे लिये ये सबसे बडी भिक्षायें हैं जो मैं तुझ से मागता हूँ।

—दरबारीलाल 'सत्य भक्त'

भाई ! सबकी एक कहानी ।
पथ जुदे हैं, घाट जुदे हैं, पर है सब मे पानी ॥ भाई ॥
जब तक मर्म न समझा तब तक होती खींचा तानी
पर्दा हटा, हटे सब विभ्रम, दूर हुई नादानी ॥ भाई ॥
वर्ण, अवर्ण, अहिंसा, हिंसा, मूर्ति न.मानी मानी
अपनी अपनी जगह ठीक हैं सब ही हैं लासानी ॥ भाई ॥
यह विरोध-कल्पना शब्द की होती है मन मानी
लड़ते और झगडते मूरख, करे समन्वय ज्ञानी ॥ भाई ॥

—'सत्यभक्त'

वही सत्य पशु यज्ञ है जहा सभ्यतोद्धार,
मानवता की अग्नि मे पशुता का संहार ।
जन समाज के कुड मे धन का आहुति दान,
धन वैभव जिससे सफल है धन यज्ञ महान ॥
विनय कुड मे कर दिया अहकार का होम,
मान यज्ञ मे मन गला पिघला जैसे मोम ।
जनता के हित के लिये करना जीवन-दान,
प्राण यज्ञ यह विश्व का करता है उत्थान ॥
नाम रहे या जाय पर हो समाज उद्धार,
कीर्ति यज्ञ यह विश्व मे अनुपम त्यागागार ।
जग हित रूपी ब्रह्म मे किया व्यक्ति हित लीन,
यज्ञ शिरोमणि है यही ब्रह्म यज्ञ स्वाधीन ॥
मूर्ति अमूर्ति विरोध क्या दोनो एक समान,
मूर्ति पूजता कौन है सब पूजे भगवान ।
उन्हे मूर्तिया व्यर्थ हैं जिनने पाया ज्ञान,
देखें अन्तर्दृष्टि से अणु अणु मे भगवान ॥
मित्र शत्रु के चित्र भी जिनको एक समान,
अणु भर क्षुब्ध न कर सकें जिनको ध्वजा निशान ।
घूरा हो या तीर्थ हो जिनके हृदय न भेद,
मन्दिर और मसान का जिनको हर्ष न खेद ॥

—'सत्यभक्त'

मानव

मानव तन निर्माण किया, पर मानव कब निर्माण करोगे,
मानव तन मे मानवता भर, कब पशुता के प्राण हरोगे।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र जन, सब अपना अभिमान दिखाते,
हिन्दू मुसलमान ईसाई, जैन बौद्ध सब द्वन्द्व मचाते,
जल मे ही अब आग लगी है, बोलो कब यह ताप हरोगे।
जापानी चीनी अमरीकी, जर्मन इगलिश हिन्दुस्तानी,
तुर्की डच इटालियन हब्शी, फ्रेन्च पोल रशियन यूनानी,
लड लड कर शैतान बने हैं, कब इनके मन प्रेम भरोगे।
रंग रंग के मानव तन हैं, मानवता न कही दिखलाती,
सागर मे जल राशि भरी है, पर यात्री की प्यास न जाती,
मानवता पददलित हुई है, कब मानव अवतार धरोगे।

—सत्यभक्त

पंचतंत्र की नीति

जो मनुष्य कूप मंडूक बना रहता है, जो प्रसन्नचित्त रहकर देश देशान्तर मे भ्रमण नही करता वह विद्या, हुनर और धन इन तीनो मे से कोई भी चीज अच्छी तरह से प्राप्त नही कर सकता।

धन कमाने के लिये ग्रह-नक्षत्र आदि पर अत्यधिक भरोसा करना एक तरह का लडकपन है। जो ऐसा करता है, लक्ष्मी उसके हाथ नही लगती। अर्थ दिलानेवाला नक्षत्र 'अर्थ' आप ही है। ग्रह या तारे कुछ नही कर सकते। सौ बार ही प्रयत्न करना पड़े, अर्थ-साधन-सफलता प्राप्त करके ही दम लेना चाहिए। अर्थ अर्थ के द्वारा वशीभूत किया जाता है।

निर्दोष दान

(आचार्य विनोबा भावे)

इस भूमि मे अनेक साधु-सन्त पैदा हुए और उन्होंने भारतीय जीवन को दान-भावना से भर दिया है। आप सब साल भर मे कुछ न कुछ दान करते हैं—धर्म करते हैं। लेकिन, दान करते समय आप कभी विचार भी करते हैं? आज तो हमने विचार से स्तीफा ही दे दिया है। विवेक अब हमारे पास रहा ही नही। विचार का चिराग वुझ जाने से आचार अन्धा हो गया है। मेरे नजदीक विचार या वुद्धि की जितनी कीमत है उतनी तीनो लोको मे और किसी चीज की नही है। वुद्धि वहुत वडी चीज है। आप जो दान देते हैं तो क्या सोचते है? चाहे जिसे दान दे देने मे क्या वह धर्म कार्य भली भांति हो जाता है? दान और त्याग मे भेद है। हम त्याग उन चीजो का करते हैं जो वुरी होती है। अपनी पवित्रता को उत्तरोत्तर वढाने के लिये हम उन पवित्रता मे वाधा डालने वाली चीजो का त्याग करते हैं। घर को स्वच्छ करने के लिए कूडे करकट का त्याग करते है, उसे फेक देते हैं। त्याग का अर्थ है फेंक देना लेकिन दान का मतलव फेंकना नही है। हमारे दरवाजे पर कोई भिखारी आ गया। कोई वावा जी आ गये। दे दी उसे एक मुट्ठी अन्न या एक आध पैसा—इतने से दान-क्रिया नही होती। वह मुट्ठी भर अन्न आपने फेंक दिया उस कर्म मे लापरवाही है। उसमे न तो हृदय है न वुद्धि। वुद्धि और भावना के संयोग से जो क्रिया होती है वही सुन्दर होती है। दान के मानी फेंकना नहीं, वल्कि वोना है।

वीज वोते समय जिस तरह हम जमीन अच्छी है या नही इसका विचार करते हैं, उसी तरह हम जिसे दान देते है वह भूमि, वह व्यक्ति कैसा है इस तरफ ध्यान देना चाहिए। किसान जव वीज वोता है तो एक दाने के सौ दाने

करने के खयाल से बोता है। वह बडी सावधानी से बोता है। घर के दाने खेत मे बोता है। उन्हे चाहे जैसे बेतरतीब बखेर नही देता। घर के दाने तो कम थे, लेकिन वहा खेत मे सौ गुने बढ गये। दान-क्रिया का भी यही हाल है। जिसे हमने मुट्ठी भर दाने दिये, क्या वह भी उनकी कीमत बढायेगा? क्या वह उन दानो की अपेक्षा सौ गुने मूल्य का कोई काम करेगा? दान करते समय लेने वाला ऐसा ढूढिए जो उस दान की कीमत बढाये। हम जो दान करें वह ऐसा हो जिससे समाज को सौ गुना फायदा पहुचे। वह दान ऐसा हो जो समाज को सफल बनाये। हमे यह विश्वास होना चाहिए कि उस दान की बदौलत समाज मे आलस्य, व्यभिचार और अनीति बढेगी। आपने एक आदमी को पैसे दिये, दान दिया और उसने उसका दुरुपयोग किया, उस दान के बल पर अनीतिमय आचरण किया, तो उस पापमय मनुष्य मे सहयोग करने के कारण आप भी दोष के भागी बने। आपको यह देखना चाहिए कि हम असत्य, अनीति, आलस्य, अन्याय से सहयोग कर रहे है या सत्य, उद्योग, श्रम, नीति और धर्म से। आपको इस बात का विचार करना चाहिए कि आपके दिये हुए दान का उपयोग होता है या दुरुपयोग। अगर आप इसका ख्याल न रखेंगे तो आपकी दान-क्रिया का अनर्थ होगा। हम जो दान देते है उसकी तरफ हमारा पूरा पूरा ध्यान होना चाहिए। दान का अर्थ है बीज बोना। आपको यह देखना चाहिए कि यह बीज अकुरित हो कर इसका पौधा बढता है या नही।

तगडे और तन्दुरुस्त आदमी को भीख देना, दान करना अन्याय है। कर्महीन मनुष्य भिक्षा का, दान का अधिकारी नही हो सकता। भगवान का कानून है कि हर एक मनुष्य अपनी मेहनत से जिये। दुनिया मे बिना शारीरिक श्रम के भिक्षा मागने का अधिकार केवल सच्चे सन्यासी को है। सच्चे सन्यासी को—जो ईश्वर भक्ति के रंग मे रगा हुआ है, ऐसे सन्यासी को ही यह अधिकार है। क्योकि ऊपर से देखने मे भले ही ऐसा मालूम पडता हो कि वह कुछ नही करता, फिर भी दूसरी अनेक बातो से वह समाज की सेवा करता है। पर ऐसे सन्यासी को छोड कर और किसी को भी अकर्मण्य रहने का अधिकार नही है। दुनिया मे आलस्य बढाने सरीखा दूसरा भयंकर पाप नही है।

आलस्य परमेश्वर के दिये हुए हाथ पैरो का अपमान है। अगर कोई अन्धा हो तो उसे रोटी तो मुझे देनी चाहिए, लेकिन उसको भी सात आठ घण्टे काम तो दूगा ही। उसे कपास लोढने का काम दे दूंगा। जब एक हाथ थक जाये तो दूसरा हाथ काम मे लाये और इस तरह वह आठ घंटे

परिश्रम करे और मेहनत की रोटी खाये। अन्धे-लगडे-लूले भी जो काम कर सकें वह काम उनसे करा कर उन्हें रोटी देनी चाहिए। इससे श्रम की पूजा होती है और अन्न की भी।

इसलिए जिसे आप दान देते है, वह कुछ समाज-सेवा, कुछ उपयोगी काम करता है या नही। यह भी आपको देखना चाहिए। उस दान को बोया हुआ बीज समझिये। समाज को उसका पूरा पूरा बदला मिलना जरूरी है। अगर दाता अपने दान के विषय मे ऐसी दृष्टि नही रखेगा तो वह दान धर्म के बदले अधर्म होगा। अविवेक या निरी लापरवाही का काम होगा।

हर किसी को कुछ न कुछ दे देने मे, भोजन कराने मे, बिना विचारे दान-धर्म करने से अनर्थ होता है। अगर कोई गोरक्षिणी सस्था या गोशाला को कोई कुछ देना चाहता है तो उसे देखना चाहिए कि क्या उस गोशाला मे अधिक दूध वाली गाये निकलने वाली है? क्या वहा गायो की नस्ल सुधारने की भी कोशिश होती है? क्या बच्चो को गाय का सुन्दर और स्वच्छ दूध मिलता है? क्या वहा से अच्छी अच्छी बैलो की जोडिया खेतो के लिए मिलती है? क्या गोरक्षण और गोवर्धन की वैज्ञानिक छानबीन वहा होती है? जहा मरियल गायो की भरमार है, बेहद गदगी से सारी हवा दूषित हो रही है ऐसे पिंजरापोल रखना दान-धर्म नही है।

किसी भी सस्था या व्यक्ति को आप जो कुछ देते है उससे समाज को कहा तक लाभ होता है यह आपको देखना ही चाहिए। हिन्दुस्तान मे दान मे वृत्ति तो है लेकिन विचार-विवेक न होने के कारण समाज समृद्ध और सुन्दर दिखने के सिवाय आज निस्तेज, दबा हुआ और रोगी ही दिखाई देता है। आप पैसे फेंकते हैं बोते नही है। उससे न इहलोक बनता है और न परलोक। यह आप न भूलें।

दान का भी एक शास्त्र है वह कोई निरर्थक शून्य क्रिया नही है।

त्याग का स्वरूप

भारतवर्ष के लोग त्याग के नाम पर ठगे जा रहे हैं। अनेक साधु-सन्यासी त्याग लेकर निकल पडे हैं। उनका वाह्य त्याग देखकर भारतवर्ष ठगा जा रहा है। क्योंकि इतनी यहा आर्यता है, त्याग का प्रेम है, इससे यहा के लोग त्याग के वहाने ठगे जाते हैं किन्तु सच्ची पहचान नही करते।

ससार-लोलुपी जीवो ने किसी सेठ साहूकारो को या अमलदार-पदवी धारियो को वडे मान रखा है, किन्तु क्या वह वास्तव मे वडा हो गया ? इसी प्रकार कल के भिखारी ने आज वेश वदल दिया, स्त्री-कुटुम्व को छोड दिया, तो इससे क्या वाह्य सयोग-वियोग से त्याग है ? अतरग मे कुछ परिवर्तन हुए हैं या नहीं वह तो देख। वाहर से दिखाई देता है कि अहो कैसा त्यागी है ! स्त्री नही, वच्चे नहीं, जगल मे रहता है। ऐसे वाह्य त्याग को देखकर वडा मानता है। लेकिन त्याग का क्या स्वरूप है उसे नही समझते। वाह्य पदार्थ को छोडना अपने हाथ की वात नही है तव फिर अपने हाथ मे क्या है जिसे स्वय छोड सकता है। मैं शुद्ध चिदानन्द मूर्ति हू ऐसा स्वभाव का भान करके विकार मे, पुण्य-पाप मे युक्त न होना और स्वभाव मे रहना अपने हाथ की वात है उसी का नाम त्याग है। ऐसा त्याग आने पर मकान, स्त्री कुटुम्व का त्याग सहज हो जाता है।

त्याग करने वाला प्रथम दशा मे क्या विचार करता है कि कर्म और उसके सयोग से होने वाले व्रत और अव्रत के परिणाम अन्य समस्त परभाव है, विकार है, श्रावक के वारहव्रत और मुनियो के पंच व्रत-महाव्रत भी विकार हैं, क्योकि उन विकारो मे अपने अर्थात् मेरे स्वभाव द्वारा विस्तार नही है। मैं अकेला वीतराग ज्ञान स्वरूप हू। इसलिए उन सवका मुझ मे विस्तार नही है। मेरा विस्तार मुझ से है। मेरे ज्ञान-स्वरूप के अतिरिक्त जो वदलते है, खण्ड

स्वरूप हैं—ऐसे जो व्रतादि के परिणाम होते हैं उनमें एक रूप नहीं होना, किन्तु मैं ज्ञाता तो पृथक् का पृथक् ही रहता हू—इनमे वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो निर्दोष सत्व तत्व हू। इस प्रकार जानने वाला प्रथम विचार करता है। इसलिए जो पहले जानता है वही वाद मे छोडता है। प्रत्याख्यान करने वाले की प्रथम भूमिका कैसी होती है, त्यागी की दशा कैसी होती है? इन भावो मे स्थिर होना ही त्याग है। घर के अवलम्बन से या आश्रय से त्याग हुआ ऐसा नही है। जिस प्रकार लोक मे कोई पुरुष परवस्तु को 'यह परवस्तु है'—ऐसा जान ले तव जानकर 'पर-वस्तु' का त्याग करता है। उसी प्रकार ज्ञानी सर्व परद्रव्यो के भावो को "यह परभाव है" ऐसा जानकर उन्हे छोडता है।

मांसाहार और शिकार

मासाहार मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नही है। उसके दांतो और आंतो की वनावट इसकी साक्षी है।

न मासाहार से वह वल और शक्ति ही प्राप्त होती है जो घी, दूध और फलाहार से प्राप्त होती है, इसके सिवाय मासाहार तामसिक है। उनमे मनुष्य की सात्विक वृत्तियो का घात होता है। इसी तरह शिकार खेलना भी मनुष्य की नृशसता है, व्याघ्र वगैरह हिंसक पशु भी तभी दूसरे जानवरो पर आक्रमण करते हैं जव उन्हे भूख सताती है, किन्तु मनुष्य उनसे भी गया वीता है, जो डर से भागते हुए पशुओ के पीछे घोडा दौडाकर और वाण या वन्दूक की गोली से उनको भूनकर अपना दिल वहलाता है।

कुछ लोगो का कहना है कि शिकार खेलने से वीरता आती है। इसलिए मृगया करना क्षत्रिय का कर्तव्य है। उन्होंने शायद क्रूरता और निर्दयता को ही वीरता समझा है, किन्तु वीरता आन्तरिक शौर्य है जो तेजस्वी पुरुषो मे समय समय पर अन्याय व अत्याचार का दमन करने के लिए प्रकट होती है।

भारत की पराजय के कुछ कारण

१ फूट—पृथ्वीराज व जयचन्द आदि इसके उदाहरण हैं।

२ ईर्षा—मराठा साम्राज्य के अध. पतन के समय सिंधिया, होल्कर आदि मे।

३ विश्वासघात—सिख सेनापति व मीरजाफर आदि।

४ राजनैतिक—पृथ्वीराज की अनुचित क्षमा और राणाप्रताप का भाइयो को विद्रोही वना लेना, वीरता होने पर भी नीति से काम न लेना।

५ अधविश्वास—शत्रु-दल ने अगर तीर मारकर झडा गिरा दिया तो इसी वात से हिन्दू सेना का भाग उठना।

६ अराष्ट्रीयता—एक हिन्दू राजा के अध पतन को दूसरे हिन्दू राजा का चुपचाप देखते रहना। राष्ट्रीयता के नाते उसे अपनी क्षति न समझना।

७ चौकापथी मूढता—हिन्दू सिपाहियो की रसोई मे मुसलमान सिपाहियो के घुसने से हिन्दुओ का भूखे रहना और तैयार रसोई विरोधियो के हाथ लगना आदि।

८ वर्णव्यवस्था—राज्य का कारवार क्षत्रियो के हाथ मे ही होने से अन्य तीन वर्णों का इस तरफ से उदासीन होकर 'कोउ नृप होय हमे का हानी' वाली नीति का पालन करना। इसलिए विदेशी राजाओ का भी देशी राजाओ की तरह स्वागत करना।

९. कोई भी देश जव अपने समय मे समृद्धि की चरम सीमा पर पहुचता है तो उसमे विलासिता आदि की मात्रा वढ जाती है। धर्म और कर्म प्राय लुप्त ही हो जाता है और वासना का राज्य वढ जाता है। इससे अनेक दुर्गुण पैदा होने के साथ ही वीरता और त्याग का अभाव हो जाता है। भारत मे भी ऐसा ही हुआ।

काव्य-खण्ड

[प्रस्तुत प्राचीन 'काव्य-खण्ड' मे प्रथमत हम एक प्रार्थना, दिव्य-प्रकाश शीर्षक से एक कविता एव जैन-समाज मे प्रचलित ढाल की पद्धति की एक रागिनी सम्मिलित कर रहे है। ये तीनो कविताए स्व० जननमल जी को विशेष प्रिय थी। —सम्पादक]

प्रार्थना

हे दयालो देव तेरी, शरण हम सब आ रहे।
शुद्ध मन मे एक तेरा, ध्यान हम सब ध्या रहे॥
मोह, मद, ममता के त्यागी, वीतरागी तुम प्रभो।
हम भी उस पथ के पथिक हो, भावना यह भा रहे॥१॥

सद्गुरु मे हो हमारी, भक्ति सच्चे भाव से।
धर्म रग-रग मे रमे, हरदम यही हम चाह रहे॥
दिल मे पापो के प्रति, प्रतिपल हमारी हो घृणा।
प्रेम हो सतसग से यह, लालसा, दिल ला रहे॥२॥

दूसरो की देख वढती, हो न ईर्ष्या लेश भी।
सर्वदा ग्राहक गुणो के, हो हृदय मे गा रहे॥
त्यागमय जीवन वितायें, शान्तिमय वर्ताव हो।
भाव हो समभाव तेरा, पन्थ जो हम पा रहे॥३॥

दिव्य प्रकाश

भगवन, मुझको दिव्य प्रकाश चाहिये।
अटल विश्वास चाहिये, तिमिर का नाश चाहिये॥
प्राणी प्राणी मे दर्शन हो अपनी आत्मा का।
तू मैं का भेद ही समाप्त चाहिये ॥ टेर ॥

देखू सद्गुण औरो के दुर्गुण बिल्कुल न देखूँ।
भावो का विशद विकास चाहिये ॥ अटल ॥
सत्य, प्रिय बोलू मुख से मिथ्या कभी न बोलू।
वह सच्ची ताकत मेरे पास चाहिए ॥ अटल ॥
सुख-दुख चाहे सौ आये मेरी समता नही जाये।
अनुभव का उच्चतम अभ्यास चाहिए ॥ अटल ॥
न बनूँ मैं क्रोधी मानी, कामी ईर्ष्यालु दभी।
पापी विचारो से वृत्ति उदास चाहिए ॥ अटल ॥
निर्भय बनकर मैं प्रभुवर सत पथ पर बढता जाऊ।
सत्य वृत्तियो का शुभ सहवास चाहिए ॥ अटल ॥
चन्दन के दिल मे अब तो तडफ यह हरदम।
सत चित आनन्द का उल्लास चाहिए ॥ अटल ॥

ढाल

धन स्वजन सभी को छोड़, कफन को ओढ, पडेगा जाना, होगा परलोक ठिकाना।
मुश्किल से मानव जन्म मिला, कैसा किस्मत का रंग खिला,
पर चद दिनो का है तेरा चमकाना, होगा परलोक ठिकाना ॥ १ ॥
तू धन को देख लुभाता है, बढ बढकर शान दिखाता है।
पर धरा रहेगा धन का भरा खजाना, होगा पर लोक ठिकाना ॥ २ ॥
तू वक्त फिजूल गवाता है, सत सगति मे नही आता है।
पर आखिर साथ चलेगा एक न दाना, होगा परलोक ठिकाना ॥ ३ ॥
तू पाप पिण्ड भरता रहता, बक-ध्यान सदा धरता रहता।
पर आखिर तुझे पडेगा फिर पछताना, होगा परलोक ठिकाना ॥ ४ ॥
कुछ करना है अब ही कर ले, तुलसी शिक्षा दिल मे धरले,।
सागर जिसमे फिर कभी नही घबराना, होगा परलोक ठिकाना ॥ ५ ॥
धन स्वजन सभी को छोड, कफन को ओढ, पड़ेगा जाना, होगा परलोक ठिकाना।

(१)

जीवनि के परिनामनि की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥टेक॥
नित्य निगोद माहि तैं कढिकर, नर पर जाय पाय सुख दानी
समकित लहि अंतर्मुहूर्त मे, केवल पाय वरै शिवरानी ॥ १ ॥
मुनि एकादश गुण स्थानक चढि, गिरत तहां तैं चित भ्रम ठानी
भ्रमत अर्ध पुद्गल प्रावर्तन, किंचित काल ऊन पर मानी ॥ २ ॥
निज परिनामनि की सँभाल मे, तातैं गाफिल मत ह्वै प्रानी
बंध मोक्ष परिनामनि ही सो, कहत सदा श्रीजिनवर बानी ॥ ३ ॥
सकल उपाधि निमित भावनि सो, भिन्न सु निज परिनति को छानी,
ताहि जानि रुचि ठानी होहु थिर, भागचन्द ये सीख सयानी ॥ ४ ॥

(२)

ऐसे मिले भाव जब पावै तब हम नर भव सुफल कहावैं ॥ टेक ॥
दरश बोधमय निज आतम लखि, परद्रव्यन को नहि अपनावें ।
मोह राग रुष अहित जान तजि झटित दूर तिनको छिटकावैं ॥ १ ॥
कर्म शुभाशुभ बंध उदय मे हर्ष विषाद चित्त नहि लावैं ।
निज हित हेत विराग ज्ञान लखि तिनसो अधिक प्रीति उपजावैं ॥ २ ॥
विषय चाह तजि आतम साज सजि, दुख दायक विधि बंध खिरावैं ।
भागचन्द इह सुख सब सुखमय आकुलता बिन लखि सिरनाऊँ ॥ ३ ॥

(३)

आतम अनुभव करना रे भाई,
जब लों भेद ज्ञान नहिं उपजै जन्म मरन दुख भरना रे भाई ॥ टेक ॥
आतम पद नव तत्व बखाने व्रत तप संजम धरना रे ।
आतम ज्ञान बिना नहि कारज जौनी संकट परना रे ॥ १ ॥
सकल ग्रंथ दीपक है भाई मिथ्यातम के हरना रे ।
कहा करे ते अंध पुरुष को जिन्हे उपजना मरना रे ॥ २ ॥
द्यानत जे भवि सुख चाहत है तिनको यह अनुसरना रे ।
सोहं यह दो अक्षर जप के भवजल पार उतरना रे ॥ ३ ॥

(४)

जिनको हिरदै प्रभु नाम नहीं तिन नर अवतार लिया न लिया ।
दान विना घरवास वास के लोभ मलीन धिया न धिया ॥ १ ॥
मदिरापान कियो घट अन्तर जल मल सोधि पिया न पिया ।
आन प्राण के मास भखै तै करुना भाव हिया न हिया ॥ २ ॥
रूपवान गुन खान वानि शुभ शील विहीन तिया न तिया ॥
कीरतवत मृतक जीवत है अपयश वत जिया न जिया ॥ ३ ॥
धाम माहि कछु दाम न आये वह व्योपार किया न किया ॥
द्यानत एक विवेक किये विन दान अनेक दिया न दिया ॥ ४ ॥

(५)

मान ले या सीख मोरी झुकै मन भोगन ओरी ॥ टेक ॥
भोगे भुयग भोगे सम जानो जिन इनसे रति जोरी
ते अनन्त भव भीम भरे दुख परे अधोगति पोरी
बधे दृढ पातक डोरी ॥ १ ॥
इनको त्याग विरागी जे जन भये ज्ञान वृष धोरी
तिन सुख लह्यो अचल अविनाशी भव फासी दई तोरी
रमे तिन सग शिव गोरी ॥ २ ॥
भोगन की अभिलाष हरन को त्रिजग सम्पदा थोरी
यातें ज्ञानानद कहै अब पियौ पियूष कटोरी
मिटे भव व्याधि कठोरी । मान ले या सीख मोरी ॥ ३ ॥

(६)

हम तो कबहु न निज घर आये ।
पर घर फिरत बहुत दिन वीते नाम अनेक धराये ॥ टेक ॥
पद पद निज पद मानि मगन ह्वै पर परनति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर चेतन भाव न भाये ॥१॥
नर पशु देव नरक निज जान्यो परजय बुद्धि लहाये ।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी आतम गुन नहि गाये ॥२॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर कहा कीजै पछताये ।
दौलत जो अजहू विषयन को सत गुरु वचन सुनाये ॥३॥

(७)

आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे ॥ टेक ॥
भटके द्वार द्वार लोकन के कूकर आशा धारी
आतम अनुभव रस के रसिया उतरे न कबहुं खुमारी ॥ १ ॥
आशा दासी के जे जाये, ते जन-जन के दासा
आशा दासी करे जे नायक लायक अनुभव प्यासा ॥ २ ॥
मनसा प्याला प्रेम मसाला ब्रह्म अग्नि पर जाली
तन भट्टी अवटाई पिये कस जागे अनुभव लाली ॥ ३ ॥
आगम प्याला पियो मतवाला चिन्हो अध्यातम वासा
आनन्द घन चेतन व्है खेले देखे लोक तमासा ॥ ४ ॥

(८)

राम कहो रहमान कहो कोउ कान कहो महादेव री ।
पारस नाथ कहो कोउ ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥ १ ॥
भोजन भेद कहावत नाना एक मृत्तिका रूप री ।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित आप अखण्ड सरूप री ॥ २ ॥
निज पद रमे राम सो कहिये रहिम करे रहिमान री ।
करशे करम कान सो कहिये महादेव निर्वाण री ॥ ३ ॥
परसे रूप पारस सो कहिये ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री ।
इह विध साधो आप आनन्द घन चेतन मय निष्कर्म री ॥ ४ ॥

(९)

अजब जोत है तेरी हो आतम अजब जोत है तेरी ।
तू परमातम तू परमागम लक्ष्मी रिद्धि सब तेरी ॥
सिद्ध बुद्ध है तू सिद्धिनायक तू गुन कुसुम करेरी ।
तेरा गुन गौरव गुनवे को सुदिन भई मति मेरी ॥
चिदानद चेतन तू चातुर सुमति सुन तू है मेरी ।
भू लोकहा भमे या भव मे भई जननी केरी ॥
दूर नही आवट मे तोहे सद ब्रह्म ज्ञान री तेरी ।
माया मोह तिमिर दल नाशो ज्ञान दशा गति घेरी ॥
विनय स्वरूप संभारो अपनो कुमति दूर उरेरी ।
आप ही अपना आप विचारो सुमति भई अब तेरी ॥

(१०)

अपने को आप भूल के हैरान हो गया
माया के जाल मे फंसा वीरान हो गया ।
जड देह को अपना स्वरूप मान मन लिया,
दिन रात खान पान काम काज दिल दिया ।
पानी मे मिल के दूध एक जान हो गया ॥ १ ॥

विषयो को देख देख के लालच मे आ रहा,
दीपक मे ज्यो पतंग जाय के समा रहा ।
बिना विचार के सदा नादान हो गया ॥ २ ॥

कर पुण्य पाप स्वर्ग नरक भोगता फिरे,
तृष्णा की डोर ने वधा सदा जन्म धरे ।
पी कर के मोह की सुरा बे भान हो गया ॥ ३ ॥

सत सग मे जाकर सदा दिल मे विचार ले,
बदन मे अपने आप रूप को निहार ले ।
ब्रह्मानद मिले मोक्ष जभी ज्ञान हो गया ॥ ४ ॥

(११)

साधो देखो जग बौराना,
साच कहो तो मारन ध्यावै झूठे जग पतियाना । टेक ।
हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना ।
आपस मे दोउ लडे मरतु है मरम कोई नही जाना ॥ १ ॥
बहुत मिले मोहि नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना ।
आतम छोडि पाषानै पूजै तिनका थोथा ज्ञाना ॥ २ ॥
आसन मारि के डिमधरि बैठे मन मे बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ व्रत भुलाना ॥ ३ ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे छापे तिलक अनुमाना ।
साखी शब्दै गावत भूलै, आतम खबर न जाना ॥ ४ ॥
घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना ।
गुरू वा सहित शिष्य सब बूडे, अन्त काल पछिताना ॥ ५ ॥
बहुतक देखे पीर औलिया पढे किताब कुराना ।
करैं मुरीद कबर बतलावैं उन्हू खुदा न जाना ॥ ६ ॥

हिन्दू की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी ।
वह करै जिबह वो झटका मारै आग दोऊ घर लागी ॥ ७ ॥
या विधि हँसत चलत है हमको आप कहावै स्याना ।
कहे कबीर सुनो भई साधो इनमें कौन दिवाना ॥ ८ ॥

(१२)

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो ।
समदर्शी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ।
इक नदिया इक नाल कहावत मैलो नीर भरो ।
जब मिल के एक वर्ण भयो तो सुरसरि नाम परो ॥
इक लोहा पूजा मे राख्यो इक घर बधिक परो ।
पारस गुण अवगुण नहिं चितवे कंचन करत खरो ॥
यह माया भ्रम जाल कहावे सूरदास सगरो ।
अबकी बेर मोहि पार उतारो नहिं प्रण जात टरो ॥

(१३)

सब दिन होत न एक समान ॥
इक दिन राजा हरिश्चन्द्र कहे सपति मेरु समान ।
इक दिन जाय स्वपच गृह सेवत अंबर हरत मसान ॥ १ ॥
इक दिन दूलह बनत बराती चहुँ दिशि गड़त निसान ।
इक दिन डेरा होत जंगल मे कर नृपे पग तान ॥ २ ॥
इक दिन सीता रुदन करत है महा विपिन उद्यान ।
इक दिन रामचन्द्र मिल दोऊ विचरत पुष्प विमान ॥ ३ ॥
इक दिन राजा राज युधिष्ठिर अनुचर श्री भगवान ।
इक दिन द्रौपदी नग्न होत है चीर दुशासन तान ॥ ४ ॥
प्रकट है पूर्व की करनी तज मन सोच सुजान ।
सूरदास गुण कहा लग बरणों विधि के अंक समान ॥ ५ ॥

(१४)

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोकमा सहुने वंदे निन्दा न करे केनी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे धन-धन जननी तेनी रे ॥

मम दृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नव झाले हाथ रे॥
मोह माया व्यापे नहीं जेने दृढ वैराग्य जेना मन मा रे।
राम नाम सु ताली लागी सकल तीर्थ तेना तन मा रे॥
निर्लोभी ने कपट रहित छै काम क्रोध निवारया रे।
भणे नरसयो तेनु दरशन करता कुल एकोतर तारया रे॥

(१५)

ज्ञान घटे नर मूढ की सगति ध्यान घटे मन धीरज लाये,
प्रीत घटे परदेश बसे अरु भाव घटे नित ही नित जाये,
सोच घटे कोई साधु की सगति, रोग घटे कुछ औषधि खाये,
कवि 'गग' कहे सुन शाह अकब्बर पाप घटे प्रभु के गुन गाये॥

(१६)

जो दस बीस पचास भये सब होय हजार तु लाख मगेगी।
कोटी अरब्ब खरब्ब असख्य धरापति होने की चाह जगेगी॥
स्वर्ग पताल का राज किया तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी।
'सुदर' एक सन्तोष बिना शठ तेरी तो भूक कबहुं न भगेगी॥

(१७)

हिलि मिलि लीजे तासु हिलि मिलि लीजे आप,
हिलि मिलि जाने तासो हेतु न बसाइये।
होय मगरूर तासो दूनी मगरूरी कीजै,
लघुता ह्वै चले तासों लघुता निभाइये।
बोध कवि नीति को निबेरो एही भांति करो,
आपको सराहे तोही आपहु सराहिये।
दाता कहा सूरा कहा सुन्दर प्रवीणा कहा,
आपको न चाहे ताहु आपहु न चाहिए।

(१८)

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ, जासो दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ।
सुरनर मुनि असुर नाग साहेब तौ घनेरे, तौंलौं जो लौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥

त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वदत वेदचारी, आदि अन्त मध्य नाथ साहिबी तिहारी।
तोहि मागि मागनो न मागिवो कहायो सुनि, सुभाऊ सील सुजस जाचन जनपायो॥

पाहन पसु विटप विहग अपने कर लीन्हे महाराज दसरथ के रंक राय कीन्हे।
तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो, बारक कहिये कृपालु तुलसीदास मेरो।

(१९)

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी॥

नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नाहि आरत हर तोसो॥

ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो।
तात भ्रात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो॥

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावे।
त्यो त्यो तुलसी कृपालु चरन सरन पावे॥

(२०)

मजबूत पणो रखनो मन मे दुख दीन परो दरसावनो ना
वहनो कुल रीति सुमारग मे हरि ने हिय हेत हटावनो ना।
चिमनेस हसी खुशी बोलन मे विन स्वारथ वैर वनावनो ना,
जेती भलाई बने सो करो, मरजावनो है फिर आवनो ना॥

(२१)

साधू हो सो साधे काया कौटी एक न राखे माया।
लेना एक न देना दोय, ऐसा नाम साधु रा होय॥

साधु वडे परमारथी मोटा जिनरा मन
भर भर मुट्ठी देन है धर्म रूपैया धन।
एक कनक दूजी कामनी जग मे मोटी मार
राजा राणा बादशाह पट पट तोड़े हार॥

(२२)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
शख चक्र गदा पद्‌म कठमाल सोई ॥ १ ॥
तात मात सुत न भ्रात आपनो न कोई
छोड दई कुल की कान क्या करेगा कोई ॥ २ ॥
सतन सग बैठ बैठ लोक लाज खोई
अब तो बात फैल गई जाने सब कोई ॥ ३ ॥
अंसुवन जल सीच सीच प्रेम वेल वोई
मीरा प्रभु लगन लगी होनी हो सो होई ॥ ४ ॥

(२३)

साधो मन का मद त्यागो,
काम क्रोध सगत दुर्जन की ताते अह निस भागो ॥ १ ॥
सुख दुख दोनो समकर जानो और मान अपमाना
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्व पिछाना ॥ २ ॥
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे खोजे पद निरवाना
जन नानक यह खेल कठिन है किनहु गुरमुख जाना ॥ ३ ॥

(२४)

बिसर गई सब तात पराई जब से साधू सगत पाई।
नहिं कोई बैरी नहिं बेगाना सकल सग हमरी बन आई ॥ १ ॥
जो प्रभु कीन्हो सो भलाकर मान्यो यह सुमती साधू से पाई।
सब मे रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख नानक बिहसाई ॥ २ ॥

परिहास-काव्य

दूध के भरोसे भूल आये इस बार भी तो,
ग्लेक्सो के डिब्बे देख पूरे पछताओगे ।
मक्खन चुराने जाय घुसे डेरी फार्म मे तो,
डरता हू नाथ कही डडे खाय जावोगे ॥
एम ए. हो न बी ए तुम नौकरी मिलेगी कैसे,
बेकारो की सख्या कही आयके बढाओगे ।
अच्छा है जो छीर बीच बैठ खीर पिया करो,
भारत मे आओगे तो भूखे मर जाओगे ॥
नारियो को घेर कर रास जो रचाया यहाँ,
चार सौ सत्तानवे की दफा मे फस जाओगे ।
पीताम्बर पहन कर घुमे किसी आफिस मे ना,
चपरासी के द्वारा नाथ रोक दिये जाओगे ॥
गौओ को चराय के या सारथी किसी के बन,
बीसवी सदी मे नाम नही कर पाओगे ।
अच्छा है जो शेष शैया पर ही अभी रेस्ट करो,
आओगे बचाने को ना व्यर्थ फस जाओगे ॥
विड्रा करता हू प्रण रहते छुडाओ पीछा,
बीसवी सदी है जैन्टलमैन ही कहाओगे ।
संख चक्र गदा के घमड मे न भूल जाना,
कलयुग की कलें देख पीछे भाग जाओगे ॥
आने की ही जिद हो तो एक है उपाय सुनो,
सुख मे रहोगे दुबिधा मे बच जाओगे ।
रथो का चलाना छोड मोटरो की सवारी सीख,
जो पै नाथ पोलो के खिलाडी बन जाओगे ॥

छन्दशास्त्र

सारंगी

माया छोडे काया सेनी जाने झूठा नाता है,
कोई नाही तेरा प्यारा न्यारा हुमा जाता है।

पावै आपा कीया भाई नाही कोई बदा है,
चेता जोई मोही ज्ञानी ए सारगी छदा है।

मनावली

तेरा न कोई पिता मात ससार ज्ञानी विना को उतारे तुझे पार,
साचा गुरु का धरेगा सदा ध्यान चेतो सु मनावली छद को ज्ञान ॥

दोधक

भाखत है जग मे नरमूरख, ज्ञान सदा अपने घट तू रख।
ऊजल हंस भये जग तारन, चेतन दोधक छद उधारन ॥

भुयगी

यती सो विपै पच जीपै अपाना, बधै कर्म पारी, उनूको खपाना।
कभी संग नाही कियो है त्रिया सो, यही चाल चेतो भुयगी प्रिया को ॥

प्रमाणिका

अजीव जीव जानके करै क्रिया समान के,
कधी न कर्म बंध है प्रमाणिका यह छंद है।

नाराच

चले सुपथ मे सदा, रहै सुधर्म ध्यान म,
करे न मोह देह मे, गुने विचार ज्ञान मे।
स्वरूप देख साध को, सदा विनय ने मानिये,
अचेत चेत चेतना नाराच छन्द जानिये।

मल्लिका

पाप पुन्य है ममान, ज्ञान आय जीव दान।
मान छोड कर्म वद, जोड मल्लिका ये छद॥

त्रिभगी

इह तन नही तेरा कर्म घेरा, ज्ञान न हेरा जग [illegible] मे
फिर आवै जावै जगत पटावै, मुक्ति न पावै शिव [illegible] मे
भूले मत प्राणी गुरु की वाणी, मन मे आणी शुभ [illegible]
मेटे भव फदा होय अनन्दा [illegible] छदा है [illegible]भगी॥

अमृतध्वनि

अमृत धुनि दोहा प्रथम, चौविन [illegible] [illegible]।
आदि अन्त पद एक सो, स्वच्छच्चिततच्च [illegible]॥
स्वच्छच्चिततरच छन्दध्वनि लगि पदद्दलियगि।
साजज्जवकि तित्राकभभवकि मुत्रावन्वद्धगि॥

राग-रागिनी

राग-वर्णन

राग प्रथम भैरव कह्या माल-कोश पुनि जान,
हिंडोल राग तीजो कहत दीपक राग बखान।
श्री राग कवि कहत है मेघराग पुनि सार,
पट् रागन के नाम ये कहे भेद विस्तार।

रागिनी-वर्णन

भैरव की धुनि भैरवी, बंगाली वैरारि,
मधु माधव अरु सिन्धवी पाचो विरहनि नारि।
टोडी गोरी गुनकली खम्माच पहिचानि,
और कुकवी कहत है मालकोश की जानि॥
रामकली पटमजरी और कहे देव साखि,
ए नारी हिंडोल की ललित बिलावल राखि।
देशी नट अरु कान्हरो केदारो कामोद,
दीपक की प्यारी सबै महाप्रेम प्रमोद॥
धनाक्षरी आसावरी मारू बहुरि वसंत,
श्रीराग की रागिनी मौलसिरी है अत।
भोपाली अरु गूजरी देश और मल्हार,
बक वियोगिनी कामिनी मेघराग की नार॥

विज्ञान की बातें

पृथ्वी का आकार अण्डाकार गोल है। भूमध्य रेखा की लम्बाई २४९०० मील है। विषुवत् रेखा के वृत्त के मध्य ७९२६ मील है और ध्रुव से मिलने वाले व्यास की लम्बाई ७९०० मील है। समस्त धरातल का क्षेत्रफल १९ करोड ७५ लाख वर्गमील करीब है।

पृथ्वी पूर्व की तरफ ४ मिनट मे ६९॥ मील, एक घंटे मे १०४२ मील और ११॥ घंटों मे अनुमानत १२ हजार मील चलती है। इसकी चाल १ घंटे मे करीब ७० हजार मील है।

१०	अक्षांश पर	दिन	की लम्बाई	१२-८ घंटे की है
२०	"	"	"	१३-८ " "
३०	"	"	"	१४-६ " "
४०	"	"	"	१६-१ " "

६० तक २० — ५ वास्तविक १८-३ होता है।

७० अक्षांश पर ६५ दिन का एक दिन।

८० अक्षांश पर १६१ का और ९० अक्षांश पर १८६ दिन का एक दिन होता है। इसी तरह रात्रि का क्रम समझना चाहिए। ३० अक्षांश से लेकर ६० अक्षांश पर चार ऋतुएं होती हैं। ६० अक्षांश पर गर्मी मे १८ से १९ घंटे तक का दिन होता है और जाड़े मे ६ घंटे से ५ घंटे तक का [illegible] है। शीत कटिबन्ध देशों मे २॥ व ३ मास तक दिन-रात होते हैं। [illegible] के पास ६ मास तक होता है।

सूर्य पृथ्वी से ९ करोड २९ लाख मील दूर है और [illegible] लाख गुना बड़ा है।

सूर्य का व्यास ८ लाख ६५ हजार मील के करीब है। सूर्य का [illegible] पृथ्वी से १५ लाख गुना है और प्रकाश २१३९ [illegible] [illegible]

केवल १ भाग की गर्मी पृथ्वी को मिलती है। सूर्य की रोशनी हमारे पास करीव ५०० सेकण्ड मे पहुंचती है। सूर्य सम्वत्सर ३६५ दिन पाच घटा ४८ मिनट और ४६,०५४४४ सेकण्ड का है। एक वर्ष मे सूर्य-ग्रहण पृथ्वी पर ५ तक हो सकते हैं। १९ वर्षो मे ७ अधिक मास होते हैं। सूर्य की चाल वहुत सक्षम है। पृथ्वी सूर्य के वाहर घूमती रहती है तथा अन्य ग्रह भी घूमते रहते हैं। सूर्य की आकर्षण-शक्ति से कोई ग्रह-उपग्रह अपने कक्ष मे वाहर भ्रमण नही कर सकता। सूर्य के वाद बुध ग्रह इनके सबसे अधिक समीप है और सभी ग्रहो मे छोटा है।

बुध लोक मे ८८ दिन का वर्ष होता है क्योंकि सूर्य के चारो ओर इसका परिभ्रमण-काल ८८ दिन का है।

बुध के वाद शुक्र है। यह बुध से वडा है और उसका परिभ्रमण-काल २२५ दिन का है अर्थात् शुक्र लोक मे २२५ दिन का वर्ष होता है।

शुक्र के बाद पृथ्वी कुछ ही वडी है। बुध और शुक्र की कक्षायें पृथ्वी से छोटी हैं। यह ३६५। दिनो मे सूर्य की परिक्रमा करती है।

पृथ्वी के वाद मगल ग्रह सूर्य के चारो ओर घूमता है। यह यद्यपि पृथ्वी और शुक्र से छोटा है लेकिन इसकी कक्षा वडी होने के कारण इनका वर्ष प्रमाण ६८७ दिनो के वरावर है। इसके आगे वृहस्पति है। सूर्य के अतिरिक्त वृहस्पति सौर जगत् के अन्य सभी ग्रहो मे वडा है। इसे सूर्य की परिक्रमा करने मे ४३३७ दिन लगते हैं।

वृहस्पति की कक्षा के वाहर शनिश्चर की कक्षा है। इसका परिभ्रमण काल १०७५९ दिनो का होता है।

शनिश्चर के वाद यूरेनस जो शनि से छोटा है, अपनी वडी कक्षा के कारण ३०६८७ दिनो मे पूरा चक्कर लगा पाता है।

अन्तिम ग्रह नैपच्युन है। इसका वर्ष का परिणाम ६०१२७ दिनो का है।

सारे सौर जगत् मे एक ही चन्द्रमा नही है। प्रत्येक ग्रह से सम्बध रखने वाले भिन्न-भिन्न अनेक चन्द्रमा हैं इसी कारण चन्द्रमा की गणना ग्रहो मे नही है।

मनोवैज्ञानिक प्रश्नावली

१ क्या आप जब आपको काम करते आपका कोई अधिकारी दबा देता है तो घबरा जाते हैं ?

२ क्या आपको अनजानों से बातचीत शुरू करने में सकोच होता है ?

३. क्या आप अपने विचारों को प्रकट करने में सकोच करते हैं क्योंकि आपको आशका है कि सुनने वाले आप से असहमत होंगे ?

४ क्या आप जब क्रोध में होते हैं तो चीजों को तोड़ते अथवा उन्हें इधर उधर पटकते हैं ?

५. क्या आप जब लोग आपको चिढ़ाने की कोशिश करते हैं तो क्रोध में आ जाते हैं ?

६. क्या आप छोटी शिकायत पर बहुत देर तक मन में दुःख मानते रहते हैं ?

७ क्या आप बहुत बार ऐसे काम कर देते हैं कि जिन पर फिर आप तुरन्त पछताने लगते हैं ?

८. क्या आप जब कोई आपको नाराज कर देता है तो उसे आसानी से क्षमा नहीं करते ?

९ क्या आप दिन-रात की सामान्य निर्णयों में [illegible] घबरा जाते हैं ?

१० क्या आप यह अनुभव करते हैं कि आपकी अपेक्षा दूसरे लोगों के अधिक मित्र हैं ?

११. क्या आपको अपनी तजवीज या [illegible] पड़ जाये तो आप उद्विग्न हो उठते हैं ?

१२ क्या आप दूसरों को देखकर बहुत बार [illegible] करते हैं ?

१३ क्या आपको दुःस्वप्न [illegible] होती है ?

१४. क्या आपको किसी को दु:ख पहुचाने की अपेक्षा झूठ बोलना अच्छा लगता है ?

१५ क्या आपको बहुत भय रहता है कि कही दूसरो के सामने बेवकूफ न बनना पडे ?

१६ क्या लोग आपकी कमजोरी के कारण प्राय: अनुचित फायदा उठाने की कोशिश करते है ?

१७. आप बहुत यत्नशील रहते है कि दूसरो को किसी तरह भी नाराज न किया जाय ?

१८. क्या आप बहुत चिन्तित रहते है कि पता नही लोग मुझे मेरे पीछे क्या क्या कहते होगे ?

१९. क्या आप कई बार किसी काम को बीच मे छोड देते है अथवा पूरा हो जाने पर उसे नष्ट कर देते है क्योकि उसमे जरा सी कमी रह गयी है ?

२० क्या आपने कभी किसी से बोलना छोड दिया है क्योकि उसने आपकी कुछ आलोचना कर दी थी ?

२१ क्या आप जरा जरा सी बात बहुत महसूस करते है ?

(यदि ऐसा है तो आपको चाहिए कि अपनी समत्व-बुद्धि और मानसिक सतुलन को विचलित न होने दें, प्रसन्नचित्त रहे, उद्विग्न न हो और सच्ची दृष्टि से विचार करे)।

मानव-स्वभाव

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समस्त विश्व मे मनुष्यो का स्वभाव निम्न प्रकार का देखा जाता है :—

परम स्वार्थी—अपने सिवाय किसी भी दूसरे के स्वार्थ की परवाह नही करनेवाला।

स्वार्थी—अपने और अपने घरवालो के सिवाय औरो की परवाह नही करनेवाला।

सकुचित—अपने घर वालो के सिवाय रिश्तेदारो आदि की भलाई समझने वाला।

अल्पोदार—अपनी जाति या प्रान्त के लिए उदार है जो।

अर्धोदार—जिनमे राष्ट्रीयता पर्याप्त मात्रा मे है वे कहे जाते है।

उदार—जो मनुष्य मात्र से प्रेम करते है और अन्याय नही करते।

परमोदार—जो प्राणिमात्र के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझें और विश्व हित ही जिनका लक्ष्य हो।